

प्रसङ्गात् । अस्तु चेन्न, तथाप्रतिपादकस्यार्षस्याभावात् । अपि च यद्येवं क्षयोपशम इष्येत्, मिथ्यात्वमपि क्षायोपशमिकम्, सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोरुदयप्राप्त स्पर्धकानां क्षयात्सतामुदयाभावलक्षणोपशमान्मिथ्यात्वकर्मणः सर्वघातिस्पर्धकोदयाच्च मिथ्यात्वगुणस्य प्रादुर्भावोपलम्भादिति । उक्तं च ---

दहि-गुडमिव वामिस्सं पुहभावं णेव कारिदुं सक्कं।

एवं मिस्सयभावो सम्मामिच्छे त्ति णायव्वो१ (१ प्रा. प. १ , १० । गो. जी. २२. यथा नालिकेरुब्दीपवासिनः क्षुधार्दितस्यापीहागतस्यौदनादिकेऽनेकविधे ढौकिते तस्योपरि न रुचिः नापि निन्दा, यतस्तेन स ओदनादिक आहारो न कदाचित् दृष्टो नापि श्रुतः, एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टेरपि जीवादिपदार्थानामुपरि न च रुचिर्नापि निन्देति । नं. सू. पृ. १०६. ) ॥१०९॥

सम्यग्दृष्टिगुणनिरूपणार्थमुत्तरसूत्रमाह ----

असंजदसम्माइड्डी२ (२ बंधं अविरइहेउं जाणंतो रागदोसदुःक्खं च । विरइसुहं इच्छंतो विरइं काउं च असमत्थो ॥ एस असंजयसम्मो निदंतो पावकम्मकरणं च । अहिगयजीवाजीवो अवलियदिड्डी वलियमोहो । अभि. रा. को. (अविरयसम्मदिड्डी)) ॥१२॥

शंका -- तो तीसरे गुणस्थानमें औपशमिक भाव ही रहा आवे?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, तीसरे गुणस्थानमें औपशमिक भावका प्रतिपादन करनेवाला कोई आर्षवाक्य नहीं हैं । अर्थात् आगममें तीसरे गुणस्थानमें औपशमिक भाव नहीं बताया है ।

दूसरे, यदि तीसरे गुणस्थानमें मिथ्यात्व आदि कर्मोंके क्षयोपशमसे क्षयोपशम भावकी उत्पत्ति मान ली जावे तो मिथ्यात्व गुणस्थानको भी क्षायोपशमिक मानना पडेगा, क्योंकि, सादि मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा मिथ्यात्व गुणस्थानमें भी सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मके उदय अवस्थाको प्राप्त हुए स्पर्धकोंका क्षय होनेसे, सत्तामें स्थित उन्हींका उदयाभाव लक्षण उपशम होनेसे तथा मिथ्यात्व कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय होनेसे मिथ्यात्व गुणस्थानकी उत्पत्ति पाई जाती है । इतने कथनसे यह तात्पर्य समझना चाहिये कि तीसरे गुणस्थानमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और अनन्तानुबन्धीके क्षयोपशमसे क्षायोपशमिक भाव न होकर केवल मिश्र प्रकृतिके उदयसे मिश्रभाव होता है । कहा भी है ---

जिस प्रकार दही और गुडको मिला देने पर उनको अलग अलग नहीं अनुभव किया जा सकता है, किंतु मिले हुए उन दोनोंका रस मिश्रभावको प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार एक ही कालमें सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप मिले हुए परिणामोंको मिश्र गुणस्थान कहते हैं, ऐसा समझना चाहिये ॥१०९॥

अब सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकेनिरूपण करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

सामान्यसे असंयमसम्यग्दृष्टि जीव हैं ॥१२॥

समीची दृष्टिः श्रद्धा यस्यासौ सम्यग्दृष्टिः असंयतश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्च असंयतसम्यग्दृष्टिः । सो वि सम्माइट्ठी तिविहो-खइयसम्माइट्ठी वेदयसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी चेदि । दंसण-चरण-गुण-घाइ-अणंताणुबंधि-पयडीओ, मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तमिदि तिण्णिण दंसणमोह-पयडीओ च एदासिं सत्तण्हं णिरवसेस-क्खएण खइयसम्माइट्ठी उच्चइ । एदासिं सत्तण्हं पयडीणमुवसमेण उवसमसम्माइट्ठी होइ । सम्मत्त-सण्णिणद-दंसणमोहणीय-भेय-कम्मस्स उदएण वेदय-समाइट्ठी णाम । तत्थ खइयसम्माइट्ठी ण कयाइ वि मिच्छत्तं गच्छइ, ण कुणइ संदेहं पि, मिच्छत्तुब्भवं दड्ढदनण णो विम्हयं जादि१ (१ मु. जायदि । वयणेहिं वि हेदूहिं वि इंदियभयआणएहिं रुवेहिं । वीभच्छजुगुंछाहिं य तेलोक्केण वि ण चालेज्जो ॥ गो. जी. ६४७.) एरिसो चेय उवसमसम्माइट्ठी२ (२ दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइं जं पयत्थसदहणं । उवसम्मत्तमिणं पसण्णमलपंकतोयसमं । गो. जी. ६५०.) किंतु परिणाम-पच्चएण मिच्छत्तं गच्छइ, सासणगुणं पि पडिवज्जइ, सम्मामिच्छत्त-गुणं पि दुक्कइ, वेदगसम्मत्तं पि समल्लियइ३ (३ मु. समिल्लियइ ।) । जो पुणवेदयसम्माइट्ठी सो सिद्धिल४ (४ मु. सिथिल- १) -

जिसकी दृष्टि अर्थात् श्रद्धा समीचीन होती है उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं, और संयमरहित सम्यग्दृष्टिको असंयतसम्यग्दृष्टि कहते हैं । वे सम्यग्दृष्टि जीव तीन प्रकारके हैं, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और औपशमिकसम्यग्दृष्टि । सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र गुणका घात करनेवाली चार अनन्तानुबन्धी प्रकृतियां, और मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व ये तीन दर्शनमोहनीयकी प्रकृतियां, इस प्रकार इन सात प्रकृतियोंके सर्वथा विनाशसे जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि कहा जाता है । तथा इन्हीं सात प्रकृतियोंके उपशमसे जीव उपशमसम्यग्दृष्टि होता है । तथा जिसकी सम्यक्त्व संज्ञा है ऐसी दर्शनमोहनीय कर्मकी भेदरूप प्रकृतिके उदयसे यह जीव वेदकसम्यग्दृष्टि कहलाता है । उनमें

क्षायिकसम्यग्दृष्टी जीव कभी भी मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होता है, किसी प्रकारके संदेहको भी नहीं करता है और मिथ्यात्वजन्य अतिशयोंको देखकर विस्मयको भी प्राप्त नहीं होता है । उपशम सम्यग्दृष्टी जीव भी इसी प्रकारका होता है, किंतु परिणामोंके निमित्तसे उपशम सम्यक्त्वको छोडकर मिथ्यात्वको जाता है, सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त करता है, सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको भी पहुंच जाता है और वेदकसम्यक्त्वको भी प्राप्त कर लेता है । तथा जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव है वह शिथिलश्रद्धानी होता है, इसलिये वृद्ध पुरुष जिस प्रकार अपने हाथमें लकडीको शिथिलतापूर्वक पकडता है, उसी प्रकार वह भी तत्त्वार्थके विषयमें शिथिलग्राही होता है, अतः कुहेतु और

-----  
सद्वहणो थेरस्स लद्धि-ग्गहणं व सिद्धिलग्गाहो कुहेउ-कुदिट्ठंतेहि झडिदि विराहओ१ (१ दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्वहणं । चलमलिणमगाढं तं वेदयसम्मत्तमिदि जाणे ॥ गो. जी. ६४९.) । पंचसु गुणेषु के गुणे अस्सिरुण असंजदसम्माइद्धि-गुणस्सुप्पत्ती जादेत्ति पुच्छिदे उच्चदे, सत्त-पयडि-क्खएणुप्पण्ण-सम्मत्तं खइयं । तेसिं चेव सत्तण्हं पयडीणुवसमेणुप्पण्णसम्मत्तमुवसमियं । सम्मत्त-देसघाइ-वेदयसम्मत्तुदएणुप्पण्ण-वेदयसम्मत्तं खओवसमियं । मिच्छत्ताणंताणुबंधीणं सब्बघाइ-फइयाणं उदय-क्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अहवा सम्मामिच्छत्त-सब्बाघाइ-फइयाणं उदय-क्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण उहयत्थ सम्मत्त-देसघाइ-फइयाणमुदएणुप्पज्जइ जदो तदो वेदयसम्मत्तं खओवसमियमिदि केसिंचि आइरियाणं वक्खाणं तं किमिदि णेच्छिज्जदि, इदि चेत्, तण्ण, पुब्बं कुदृष्टान्तसे उसे सम्यक्त्वकी विराधना करनेमें देर नहीं लगती है ।

-----  
पांच प्रकारके भावोंमेंसे किन किन भावोंके आश्रयसे असंयतसम्यग्दृष्टी गुणस्थानकी उत्पत्ति होती है? इस प्रकार पूछने पर आचार्य उत्तर देते हैं कि सात प्रकृतियोंके क्षयसे जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है वह क्षायिक है, उन्हीं सात प्रकृतियोंके उपशमसे उत्पन्न हुआ सम्यक्त्व उपशमसम्यग्दर्शन होता है और सम्यक्त्वका एकदेश घातरूपसे वेदन करानेवाली सम्यक्प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला वेदकसम्यक्त्व क्षायोपशमिक है ।

शंका -- मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीके उदयमें आनेवाले सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावी क्षयसे तथा आगामी कालमें उदयमें आनेवाले उन्हींके सर्वघाती स्पर्धकोंके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा सम्यग्मिथ्यात्वके

उदयमें आनेवाले सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावी क्षयसे, आगामी कालमें उदयमें आनेवाले उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे तथा इन दोनों ही अवस्थाओंमें सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्वके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे जब क्षयोपशमरूप सम्यक्त्व उत्पन्न होता है तब उसे वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसा कितने ही आचार्योंका मत है उसे यहां पर क्यों नहीं स्वीकार किया है?

समाधान -- यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, इसका उत्तर पहले दे चुके हैं।

विशेषार्थ -- जिस प्रकार मिश्र गुणस्थान की उत्पत्ति सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयकी मुख्यतासे बतला आये हैं, उसी प्रकार यहां पर भी सम्यक्प्रकृतिके उदयकी मुख्यता समझना चाहिये। यदि इस सम्यक्त्वमें सम्यक्प्रकृतिकें उदयकी मुख्यता न मान कर केवल मिथ्यात्वादिके क्षयोपशमसे ही इसकी उत्पत्ति मानी जावे तो सादि मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके उदयाभाव क्षय और सदवस्थारूप उपशमसे तथा मिथ्यात्वप्रकृतिके उदयसे मिथ्यात्व गुणस्थानको भी क्षयोपशमिक मानना पड़ेगा। क्योंकि, वहां पर भी क्षयोपशमका लक्षण घटित होता है। इसलिये इस सम्यक्त्वकी उत्पत्ति क्षयोपशमकी प्रधानतासे न मानकर सम्यक्प्रकृतिके उदयकी प्रधानतासे समझना चाहिये।

सूत्रमें सम्यग्दृष्टिकेलिये जो असंयत विशेषण दिया गया है, वह अन्तदीपक है, इस ---

-----

उत्तरादो। 'असंजद' इदि जं सम्मादिडिस्स विसेसण-वयणं तमंतदीवयत्तादो हेड्डिल्लाणं सयल-गुणट्ठाणाणमसंजदत्तं परुवेदि। उवरि असंजम भावं१ (१ मु. असंजमभावं।) किण्ण परुवेदि ति उत्ते ण परुवेदि, उवरि सब्बत्थ संजमासंजम-संजम-विसेसणोवलंभादो ति। उत्तं च ---

सम्माइड्डी जीवो उवइड्ढं पवयणं तु सद्दहदि।

सद्दहदि असब्बावं अजाणमाणो गुरु-णियोगार (२ प्रा. पं. १,१२। गो. जी. २७.) ॥११०॥

णो इंदिएसु विरदो णो जीवे थावरे तसे चावि।

जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइड्डी अविरदो सो३ (३ प्रा. पं. १,११। गो. जी. २९. 'अपि'

शब्देनानुकम्पादिगुणसद्भावान्निपरधहिंसां न करोतीति सूच्यते । म. प्र., टी. १) ॥१११॥

एदं सम्माइड्ढि-वयणं उवरिम-सब्ब-गुणट्ठाणेसु अणुवट्ठइ गंगा-णई-पवाहो व्व । देसविरइ-गुणट्ठाण-परुवणट्ठमुत्तर-सुत्तमाह ---

संजदासंजदा ॥१३॥

संयताश्च ते असंयताश्च संयतासंयताः । यदि संयतः, नासावसंयतः । अथासंयतः,

-----

लिये वह अपनेसे नीचेकेभी समस्त गुणस्थानोंकेअसंयतपनेका निरूपण करता है ।

शंका -- चौथे गुणस्थानसे आगे असंयमका अभाव क्यों नहीं कहा?

समाधान -- आगे के गुणस्थानोंमें असंयमका अभाव इसलिए नहीं कहा, क्योंकि, आगेके गुणस्थानोंमें सर्व संयमासंयम और संयम ये विशेषण पाये जाते हैं । कहा भी है---

सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा उपदिष्ट प्रवचनका तो श्रध्दान करता ही है, किंतु किसी तत्त्वको नहीं जानता हुआ गुरुके उपदेशसे विपरीत अर्थका भी श्रध्दान कर लेता है ॥११०॥

जो इन्द्रियोंके विषयोंसे तथा त्रस और स्थावर जीवोंकी हिंसासे विरक्त नहीं है, किंतु जिनेन्द्रदेवद्वारा कथित प्रवचनका श्रध्दान करता है वह अविरतसम्यग्दृष्टि है ॥१११॥

इस सूत्रमें जो सम्यग्दृष्टि पद है, वह गंगा नदीके प्रवाहके समान आगेके समस्त गुणस्थानोंमें अनुवृत्तिको प्राप्त होता है । अर्थात् पांचवें आदि समस्त गुणस्थानोंमें सम्यग्दर्शन पाया जाता है ।

अब देशविरति गुणस्थानके प्ररूपण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

सामान्यसे संयतासंयत जीव हैं ॥१३॥

जो संयत होते हुए भी असंयत होते हैं उन्हें संयतासंयत कहते हैं ।

शंका -- जो संयत होता है वह असंयत नहीं हो सकता है? और जो असंयत ---

-----

नासौ संयत इति विरोधान्नायं गुणो घटत इति चेदस्तु गुणानां परस्परपरिहारलक्षणो विरोधः, इष्टत्वात्, अन्यथा तेषां स्वरूपहानिप्रसङ्गात् । न गुणानां सहानवस्थानलक्षणो विरोधः सम्भवति, सम्भवेद्धा न वस्त्वस्ति, तस्यानेकान्तनिबन्धनत्वात् । यदर्थक्रियाकारि तद्वस्तु । सा च नैकान्ते, एकानेकाभ्यां प्राप्तनिरूपितानवस्थाभ्यामर्थक्रियाविरोधात् । न चैतन्याचैतन्याभ्यामनेकान्तस्तयोगुणत्वाभावात् । सहभुवो हि गुणाः, न चानयोः सहभूतिरस्ति, असति विबन्धर्यनुपलम्भात् । भवति च विरोधः समाननिबन्धनत्वे सति । न चात्र विरोधः, संयमासंयमयोरेकद्रव्यतिनोस्त्रसस्थावरनिबन्धनत्वात् । औदयिकादिषु पंचसु गुणेषु कं गुणमाश्रित्य संयमासंयमगुणः समुत्पन्नः

होता है वह संयत नहीं हो सकता है, क्योंकि, संयमभाव और असंयमभावका परस्पर विरोध है। इसलिये यह गुणस्थान नहीं बनता है।

समाधान -- विरोध दो प्रकारका है, परस्परपरिहारलक्षण विरोध और सहानवस्थालक्षण विरोध। इनमेंसे एक द्रव्यके अनन्त गुणोंमें परस्परपरिहारलक्षण विरोध इष्ट ही है क्योंकि, यदि गुणोंका एक दूसरेका परिहार करके अस्तित्व नहीं माना जावे तो उनके स्वरूपकी हानिका प्रसंग आता है। परंतु इतने मात्रसे गुणोंमें सहानवस्थालक्षण विरोध संभव नहीं है। यदि नाना गुणोंका एकसाथ रहना ही विरोधस्वरूप मान लिया जावे तो वस्तुका अस्तित्व ही नहीं बन सकता है, क्योंकि, वस्तुका सद्भाव अनेकान्त-निमित्तक ही होता है। जो अर्थक्रिया करनेमें समर्थ हैं वह वस्तु है। परंतु वह अर्थक्रिया एकान्तपक्षमें नहीं बन सकती है, क्योंकि, अर्थक्रियाको यदि एकरूप माना जावे तो पुनः पुनः उसी अर्थक्रियाकी प्राप्ति होनेसे, और यदि अनेकरूप माना जावे तो अनवस्था दोष आनेसे एकान्तपक्षमें अर्थक्रियाके होनेमें विरोध आता है।

पूर्वके कथनसे चैतन्य और अचैतन्यके साथ भी अनेकान्त दोष नहीं आता है, क्योंकि, चैतन्य और अचैतन्य ये दोनों गुण नहीं है। जो सहभावी होते हैं उन्हें गुण कहते हैं। परंतु ये दोनों सहभावी नहीं है, क्योंकि बंधरूप अवस्थाके नहीं रहने पर चैतन्य और अचैतन्य ये दोनों एकसाथ नहीं पाये जाते हैं। दूसरे विरुद्ध दो धर्मोंकी उत्पत्तिका कारण यदि समान अर्थात् एक मान लिया जावे तो विरोध आता है, परंतु संयमभाव और असंयमभाव इन दोनोंको एक आत्मामें स्वीकार कर लेने पर भी कोई विरोध नहीं आता है, उन दोनोंकी उत्पत्तिके कारण भिन्न भिन्न हैं। संयमभावकी उत्पत्तिका कारण त्रसहिंसासे विरतिभाव है और असंयमभावकी उत्पत्तिका कारण स्थावरहिंसासे अविरतिभाव है। इसलिये संयतासंयत नामका पांचवां गुणस्थान बन जाता है।

शंका -- औदयिक आदि पांच भावोंमेंसे किस भावके आश्रयसे संयमासंयम भाव पैदा होता है?

समाधान -- संयमासंयम भाव क्षायोपशमिक है, क्योंकि, अप्रत्याख्यानावरणीय

इति चेत्क्षायोपशमिकोऽयं गुणः, अप्रत्याख्यानावरणीयस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयक्षयात् सतां चोपशमात् प्रत्याख्यानावरणीयोदयादप्रत्याख्यानोत्पत्तेः। संयमासंयमाधा१ (१ मु. संयमधराधिकृत) -राधिकृतसम्यक्त्वानि कियन्तीति चेत्क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकानि त्रीण्यपि भवन्ति पर्यायेण, (२ मु. नान्यन्तरेणा- 1)

२तान्यन्तरेणाप्रत्याख्यानस्योत्पत्तिविरोधात् । सम्यक्त्वमन्तरेणापि देशयतयो दृश्यन्त इति चेन्न,  
निर्गतमुक्तिकाङ्क्षस्यानिवृत्तविषयपिपा-सस्याप्रत्याख्यानानुपपत्तेः । उक्तं च---

जो तस-वहाउ विरओ अविरओ तह य थावर-वहाओ ।

एक-समयम्हि जीवो विरयाविरओ जिणेक्कमई३ (३ प्रा. पं. १,१३ । गो. जी. ३१. 'च'  
शब्देन प्रयोजनं विना स्थावरधमपि न करोतीति व्याख्येयो भवति । जी. प्र. टी.) ॥ ११२ ॥

संयतानामादिगुणस्थाननिरुपणार्थमुत्तरसूत्रमाह---

पमत्तसंजदा ॥१४॥

प्रकर्षेण मत्ताः प्रमत्ताः, सं सम्यग् यताः विरताः संयताः । प्रमत्ताश्च ते संयताश्च

-----

कषायके वर्तमान कालिक सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावी क्षय होनेसे और आगामी कालमें उदयमें आने योग्य उन्हींके सदवस्थारूप उपशम होनेसे तथा प्रत्याख्यानावरणीय कषायके उदयसे संयमासंयमरूप अप्रत्याख्यान-चारित्र उत्पन्न होता है ।

शंका -- संयमासंयमरूप देशचारित्रकेआधारसे सम्बन्ध रखनेवाले कितने सम्यग्दर्शन होते हैं?

समाधान -- क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक ये तीनोंमेंसे कोई एक सम्यग्दर्शन विकल्पसे होता है, क्योंकि उनमेंसे किसी एककेविना अप्रत्याख्याना चारित्रका प्रादुर्भाव ही नहीं हो सकता है ।

शंका -- सम्यग्दर्शनकेविना भी देशसंयमी देखनेमें आते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जो जीव मोक्षकी आकांक्षासे रहित हैं और जिनकी विषयपिपासा दूर नहीं हुई है, उनकेअप्रत्याख्यानसंयमकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है । कहा भी है ---

जो जीव जिनेन्द्रदेवमें अद्वितीय श्रद्धाको रखता हुआ एक ही समयमें त्रसजीवोंकी हिंसासे विरत और स्थावर जीवोंकी हिंसासे अविरत होता है, उसको विरताविरत कहते हैं ॥११२॥

अब संयतोंकेप्रथम गुणस्थानकेनिरुपण करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

सामान्यसे प्रमत्तसंयत जीव हैं ॥१४॥

प्रकर्षसे मत्त जीवोंको प्रमत्त कहते हैं और अच्छी तरहसे विरत या संयमको प्राप्त जीवोंको संयत कहते हैं । जो प्रमत्त होते हुए भी संयत होते हैं उन्हें प्रमत्तसंयत कहते हैं ।

-----

प्रमत्तसंयताः। यदि प्रमत्ताः न संयताः, स्वरूपासंवेदनात्। अथ संयताः न प्रमत्ताः, संयमस्य प्रमादपरिहाररूपत्वादिति? नैष दोषः, संयमो नाम हिंसानृतस्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिः गुप्तिसमित्यनुरक्षितः नासौ प्रमादेन विनाश्यते, तत्र तस्मान्मलोत्पत्तेः। संयमस्य मलोत्पादक एवात्र प्रमादो विवक्षितो न तद्विनाशक इति कुतोऽवसीयत इति चेत्? संयमाविनाशान्यथानुपपत्तेः। न हि मन्दतमः प्रमादः क्षणक्षयी संयमविनाशकोऽसति विबन्धर्यनुपलब्धेः। प्रमत्तवचनमन्तदीपकत्वाच्छेषातीत-सर्वगुणेषु प्रमादास्तित्वं सूचयति। पञ्चसु गुणेषु कं गुणमाश्रित्यायं प्रमत्तसंयतगुण उत्पन्नश्चेत्संयमापेक्षया क्षयोपशमिकः। कथम्? प्रत्याख्यानावरणसर्वघातिस्पर्धको ---

-----

शंका --- यदि छटवें गुणस्थानवर्ती जीव प्रमत्त हैं तो संयत नहीं हो सकते हैं, क्योंकि, प्रमत्त जीवोंको अपने स्वरूपका संवेदन नहीं हो सकता है। यदि वे संयत हैं तो प्रमत्त नहीं हो सकते हैं, क्योंकि, संयमभाव प्रमादके परिहारस्वरूप होता है।

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म और परिग्रह इन पांच पापोंसे विरतिभावको संयम कहते हैं जो कि तीन गुप्ति और पांच समितियोंसे अनुरक्षित है। वह संयम वास्तवमें प्रमादसे नष्ट नहीं किया जा सकता है, क्योंकि, संयममें प्रमादसे केवल मलकी ही उत्पत्ति होती है।

शंका -- छटवें गुणस्थानमें संयममें मल उत्पन्न करनेवाला ही प्रमाद विवक्षित है, संयमका नाश करनेवाला प्रमाद विवक्षित नहीं है, यह बात कैसे निश्चय की जाय?

समाधान -- छटवें गुणस्थानमें प्रमादके रहते हुए संयमका सद्भाव अन्यथा बन नहीं सकता है, इसलिये निश्चय होता है कि यहां पर मलको उत्पन्न करनेवाला प्रमाद ही अभीष्ट है। दूसरे छटवें गुणस्थानमें होनेवाला स्वल्पकालवर्ती मन्दतम प्रमाद संयमका नाश भी नहीं कर सकता है, क्योंकि, सकलसंयमका उत्कटरूपसे प्रतिबन्ध करनेवाले प्रत्याख्यानावरणके अभावमें संयमका नाश नहीं पाया जाता।

यहां पर प्रमत्त शब्द अन्तदीपक है, इसलिये वह छटवें गुणस्थानसे पहलेके संपूर्ण गुणस्थानोंमें प्रमादके अस्तित्वको सूचित करता है।

शंका -- पांच भावोंमेंसे किस भावका आश्रय लेकर यह प्रमत्तसंयत गुणस्थान उत्पन्न होता है?

समाधान -- संयमकी अपेक्षा यह गुणस्थान क्षायोपशमिक है।

शंका -- प्रमत्तसंयत गुणस्थान क्षायोपशमिक किस प्रकार है?

समाधान -- क्योंकि, वर्तमानमें प्रत्याख्यानावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षय होनेसे और आगामी कालमें उदयमें आनेवाले सत्तामें स्थित उन्हींके उदयमें न आनेरूप उपशमसे तथा संज्वलन कषायके उदयसे प्रत्याख्यान (संयम) उत्पन्न होता है, इसलिये

-----

दयक्षयात्तेषामेव सतामुदयाभावलक्षणोपशमात् संज्वलनोदयाच्च प्रत्याख्यानसमुत्पत्तेः । संज्वलनोदयात्संयमो१ (१ विवक्खिदस्स संजमस्स खओवसमित्तपडुप्पायणमेत्तफलत्तादो कथं संजलणणोकसायाणं चारित्तविरोहीणं चारित्तकारयत्तं? देसघादित्तेण सपडिवक्खगुणविणिम्मूलणसत्तिविरहियाणमुदयो विज्जमाणो वि ण स कज्जकारओ त्ति संजमहेदुत्तेण विवक्खियत्तादो, वत्थुदो दु कज्जं पडुप्पाएदि मलजणणपमादो वि य। गो. जी., जी. प्र., टी. ३२.) भवतीत्यौदयिकव्यपदेशोऽस्य किं न स्यादिति चेन्न, ततः संयमस्योत्पत्तेरभावात् । क्व तद् व्याप्रियत इति चेत्प्रत्याख्यानावरण-सर्वघातिस्पर्धकोदयक्षयसमुत्पन्नसंयममलोत्पादने तस्य व्यापारः । संयमनिबन्धनसम्यक्त्वापेक्षया क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकगुणनिबन्धनः । सम्यक्त्वमन्तरेणापि संयमोलम्भनार्थः सम्यक्त्वानुवर्तनेनेति चेन्न, आप्तागमपदार्थेष्वनुत्पन्नश्रद्धस्य त्रिमूढालीढचेतसः संयमानुपपत्तेः । द्रव्यसंयमस्य नात्रोपादानमिति कुतोऽवगम्यत इति चेन्न, २ (२ मु. चेत्सम्यक्) सम्यक्ज्ञात्वा श्रद्धाय यतः संयत इति व्युत्पत्तितस्तदवगतेः उक्तं च ---

-----

क्षायोपशमिक है ।

शंका -- संज्वलन कषायके उदयसे संयम होता है, इसलिये उसे औदयिक नामसे क्यों नहीं कहा जाता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, संज्वलन कषायके उदयसे संयमकी उत्पत्ति नहीं होती है ।

शंका -- तो संज्वलनका व्यापार कहां पर होता है?

समाधान --- प्रत्याख्यानावरण कषायके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावी क्षयसे (और सदवस्थारूप उपशमसे) उत्पन्न हुए संयममें मलके उत्पन्न करनेमें संज्वलनका व्यापार होता है ।

संयमके कारणभूत सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा तो यह गुणस्थान क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक भावनिमित्तक है ।

शंका -- यहां पर सम्यग्दर्शनपद की जो अनुवृत्ति बतलाई है उससे क्या यह तात्पर्य निकलता है कि सम्यग्दर्शनके बिना भी संयमकी उपलब्धि होती है?

समाधान -- ऐसा नहीं है, क्योंकि आप्त, आगम और पदार्थों में जिस जीवके श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई तथा जिसका चित्त मूढताओंसे व्याप्त है, उसके संयमकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है।

शंका -- यहां पर द्रव्यसंयमका ग्रहण नहीं किया है, यह कैसे जाना जाय?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, भले प्रकार जानकर और श्रद्धान कर जो यमसहित है उसे संयत कहते हैं। संयत शब्दकी इस प्रकार व्युत्पत्ति करनेसे यह जाना जाता है कि यहां पर द्रव्यसंयमका ग्रहण नहीं किया है। कहा भी है -

-----

वत्तावत्त-पमाए जो वसइ पमत्तसंजदो होइ ।

सयल-गुण-सील-कलिओ महव्वई चित्तलायरणो१ (१ प्रा. पं. १, १४। गो. जी. ३३.

चित्रं प्रमादमिश्रं लातीति चित्रलं आचरणं यस्यासौ चित्रलाचरणः। अथवा चित्रलः

सारंगः, तव्दत् शवलित आचरणं यस्यासौ चित्रलाचरणः। अथवा चित्तं लातीति

चित्तलं, चित्तलं आचरणं यस्यासौ चित्तलाचरणः। जी. प्र. टी.) ॥११३॥

विकहा तहा कसाया इंदिय-णिद्दा तहेव पणयो य ।

चदु-चदु-पणमेगेगं होंति पमादा य पण्णरसा२ (२ प्रा. पं. १, १५। गो. जी. ३४।

अप्रतौ गाथेयं नास्ति।) ॥११४॥

क्षायोपशमिकसंयमेषु शुद्धसंयमोपलक्षितगुणस्थाननिरूपणार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

अप्पमत्तसंजदा ॥१५॥

प्रमत्तसंयताः पूर्वोक्तलक्षणाः, न प्रमत्तसंयताः अप्रमत्तसंयताः पञ्चदशप्रमाद-रहितसंयता इति यावत् । शेषाशेषसंयतानामत्रैवान्तर्भावाच्छेषसंयतगुणस्थानानामभावः स्यादिति चेन्न संयतानामुपरिष्ठात्प्रतिपाद्यमानः (३ मु. प्रतिपद्यमान- 1) विशेषणाविशिष्टानामस्तप्रमादानामिह

-----

जो व्यक्त अर्थात् स्वसंवेद्य और अव्यक्त अर्थात् प्रत्यक्षज्ञानियोंके ज्ञानद्वारा जानने योग्य प्रमादमें वास करता है, जो सम्यक्त्व, ज्ञानादि संपूर्ण गुणोंसे और व्रतोंके रक्षण करनेमें समर्थ ऐसे शीलोंसे युक्त है,

जो (देशसंयतकी अपेक्षा) महाव्रती है और जिसका आचरण प्रमादमिश्रित है, अथवा चित्रल सारंगको कहते हैं, इसलिये जिसका आचरण सारंगके समान श्वलित अर्थात् अनेक प्रकारका है, अथवा, चित्तमें प्रमादको उत्पन्न करनेवाला जिसका आचरण है उसे प्रमत्तसंयत कहते हैं ॥११३॥

स्त्रीकथा, भक्तकथा, राष्ट्रकथा और अवनिपालकथा ये चार विकथाएं; क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषायें, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पांच इन्द्रियां; निद्रा और प्रणय इस प्रकार प्रमाद पन्द्रह प्रकारका होता है ॥११४॥

अब क्षायोपशमिक संयमोंमें शुद्ध संयमसे उपलक्षित गुणस्थानके निरूपण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं -

सामान्यसे अप्रमत्तसंयत जीव हैं ॥१५॥

प्रमत्तसंयतोंका स्वरूप पहले कह आये हैं, जिनका संयम प्रमाद सहित नहीं होता है उन्हें अप्रमत्तसंयत कहते हैं, अर्थात् संयत होते हुए जिन जीवोंके पन्द्रह प्रकारका प्रमाद नहीं पाया जाता है, उन्हें अप्रमत्तसंयत समझना चाहिये।

शंका -- बाकीके संपूर्ण संयतोंका इसी अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिये शेष संयतगुणस्थानोंका अभाव हो जायगा?

समाधान --- ऐसा नहीं है, क्योंकि, जो आगे कहेजानेवाले अपूर्वकरणादि विशेषणोंसे ---

-----

ग्रहणात् । तत्कथमवगम्यत इति चेन्न उपरिष्ठात्तनसंयतगुणस्थाननिरूपणान्यथानुपपत्तितस्तदवगतेः । एषोऽपि गुणः क्षायोपशमिकः प्रत्याख्यानावरणीयकर्मणः सर्वघातिस्पर्धकोदयक्षयात्तेषामेव सतां पूर्ववदुपशमात् संज्वलनोदयाच्च प्रत्याख्यानोत्पत्तेः । संयमनिबन्धनसम्यक्त्वापेक्षया सम्यक्त्वप्रतिबन्धककर्मणां क्षयक्षयोपशमोपशमजगुणनिबन्धनः । उक्तं च-

णद्धासेस-पमाओ-वय-गुण-सीलोलि-मंडिओ णाणी ।

अणुवसमओ अक्खवओ ज्ञाण-णिलीणो हु अपमत्तो१

(१ प्रा. पं. १, १६ । गो. जी. ४६.) ॥११५॥

चारित्रमोहोपशमकक्षपकेषु प्रथमगुणस्थानस्वरूपनिरूपणार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

अपुव्वकरण-पविट्ट-सुद्धि-संजदेसु अत्थि उवसमा खवा ॥१६॥

युक्त नहीं है और जिनका प्रमाद नष्ट हो गया है ऐसे संयतोंका ही यहां पर ग्रहण किया है। इसलिये आगेके समस्त संयतगुणस्थानोंका इनमें अन्तर्भाव नहीं होता है।

शंका -- यह कैसे जाना जाय कि यहां पर आगे कहे जानेवाले अपूर्वकरणादि विशेषणोंसे युक्त संयतोंका ग्रहण नहीं किया गया है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, यदि यह न माना जाय, तो आगेके संयतोंका निरुपण बन नहीं सकता है, इसलिये यह मालूम पडता है कि यहां पर अपूर्णकरणादि विशेषणोंसे रहित केवल अप्रमत्त संयतोंका ही ग्रहण किया गया है।

वर्तमान समयमें प्रत्याख्यानावरणीय कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षय होनेसे और आगामी कालमें उदयमें आनेवाले उन्हींके उदयाभावलक्षण उपशम होनेसे तथा संज्वलन कषायके मन्द उदय होनेसे प्रत्याख्यानकी उत्पत्ति होती है, इसलिये यह गुणस्थान भी क्षायोपशमिक है। संयमके कारणभूत सम्यक्त्वकी अपेक्षा, सम्यक्त्वके प्रतिबन्धक कर्मोंके क्षय, क्षयोपशम और उपशमसे यह गुणस्थान उत्पन्न होता है, इसलिये क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक भी है। कहा भी है ---

जिसके व्यक्त और अव्यक्त सभी प्रकारके प्रमाद नष्ट हो गये हैं, जो व्रत, गुण और शीलोंने मण्डित है, जो निरन्तर आत्मा और शरीरके भेद-विज्ञानसे युक्त है, जो उपशम और क्षपक श्रेणीपर आरुढ नहीं हुआ है और जो ध्यानमें लवलीन है, उसे अप्रमत्तसंयत कहते हैं ॥११५॥

अब आगे चारित्रमोहनीयका उपशम करनेवाले या क्षपण करनेवाले गुणस्थानोंमेंसे प्रथम गुणस्थानके निरुपण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

अपूर्वकरण-प्रविष्ट-शुद्धि-संयतोंमें सामान्यसे उपशमक और क्षपक ये दोनों प्रकारके

करणाः परिणामाः, न पूर्वाः अपूर्वाः। नानाजीवापेक्षया प्रतिसमयमादितः  
क्रमप्रवृद्धासंख्येयलोकपरिणामस्यास्य गुणस्यान्तर्विवक्षितसमयवर्तिप्राणिनो  
व्यतिरिच्यान्यसमयवर्तिप्राणिभिरप्राप्या अपूर्वा अत्रतनपरिणामैरसमाना इति यावत्। अपूर्वाश्च ते  
करणाश्चापूर्वकरणाः १ (१ अपूर्वामपूर्वा क्रियां गच्छतीत्यपूर्वकरणम्। तत्र च प्रथमसमय एव  
स्थितिघातसघातगुणश्रेणिगुणसंक्रमाः अन्यश्च स्थितिबन्धः इत्येते पञ्चाप्यधिकारा यौगपद्येन पूर्वमप्रवृत्ताः

प्रवर्तन्त इत्यपूर्वकरणम् । अभि. रा. को. (अपुव्वकरण) । एतेनापूर्वविशेषणेन अधःप्रवृत्तपरिणामव्युदासः कृत इति द्रष्टव्यः, तत्र-तनपरिणामानामपूर्वत्वाभावात् । अपूर्वशब्दः प्रागप्रतिपन्नार्थवाचको नासमानार्थवाचक इति चेन्न, पूर्वसमानशब्दयोरेकार्थत्वात् । तेषु प्रविष्टा शुद्धिर्येषां ते अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धयः । केते? संयताः । तेषु संयतेषु 'अत्थि' सन्ति । नदीस्त्रोतो -

जीव हैं ॥१६॥

करण शब्दका अर्थ परिणाम है, और जो पूर्व अर्थात् पहले नहीं हुए उन्हें अपूर्व कहते हैं । इसका तात्पर्य यह है, कि नाना जीवोंकी अपेक्षा आदिसे लेकर प्रत्येक समयमें क्रमसे बढ़ते हुए असंख्यात-लोक-प्रमाण परिणामवाले इस गुणस्थानके अन्तर्गत विवक्षित समयवर्ती जीवोंको छोड़कर अन्य समयवर्ती जीवोंके द्वारा अप्राप्य परिणाम अपूर्व कहलाते हैं । अर्थात् विवक्षित समयवर्ती जीवोंके परिणामोंसे भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम असमान अर्थात् विलक्षण होते हैं । इस तरह प्रत्येक समयमें होनेवाले अपूर्व परिणामोंको अपूर्वकरण कहते हैं । इसमें दिये गये अपूर्व विशेषणसे अधःप्रवृत्त परिणामोंका निराकरण किया गया है ऐसा समझना चाहिये, क्योंकि, जहां पर उपरितन समयवर्ती जीवोंके परिणाम अधस्तन समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके साथ सदृश भी होते हैं और विसदृश भी होते हैं ऐसे अधःप्रवृत्तमें होनेवाले परिणामोंमें अपूर्वता नहीं पाई जाती है ।

शंका -- अपूर्व शब्द पहले कभी नहीं प्राप्त हुए अर्थका वाचक है, असमान अर्थका वाचक नहीं, इसलिये यहां पर अपूर्व शब्दका अर्थ असमान या विसदृश नहीं हो सकता है?

समाधान -- ऐसा नहीं है, क्योंकि पूर्व और समान ये दोनों शब्द एकार्थवाची है, इसलिये अपूर्व और असमान इन दोनों शब्दोंका अर्थ भी एक ही समझना चाहिये । ऐसे अपूर्व परिणामोंमें जिन जीवोंकी शुद्धि प्रविष्ट हो गई है, उन्हें अपूर्वकरण-प्रविष्ट-शुद्धि जीव कहते हैं ।

शंका -- वे कौन हैं? संयत हैं । उनमें 'अत्थि सन्ति' अर्थात् उपशमक और क्षपक होते हैं । नदीस्त्रोत-न्यायसे 'सन्ति' इस पदकी अनुवृत्ति चली आती है, इसलिये

न्यायेन सन्तीत्यनुवर्तमाने पुनरिह तदुच्चारणमनर्थकमिति चेन्न अस्यान्यार्थत्वात्। कथम्? स गुणस्थानसत्त्वप्रतिपादकः, अयं तु संयतेषु क्षपकोपशकभावयोर्वैयधिकरण्यप्रतिपादनार्थ इति। अपूर्वकरणानामन्तः प्रविष्टशुद्धयः क्षपकोपशमकसंयताः, सर्वे संभूय एको गुणः 'अपूर्वकरण' (१ इदं गुणस्थानकमन्तर्मुहूर्तकालप्रमाणं भवति। तत्र च प्रथमसमयेऽपि ये प्रपन्नाः प्रपद्यन्ते प्रपत्स्यन्ते च तदपेक्षया जघन्यादीन्युत्कृष्टान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाध्यवसायस्थानानि लभ्यन्ते, प्रतिपत्तृणां बहुत्वादध्यवसायानां च विचित्रत्वादिति भावनीयम्। ननु यदि कालत्रयापेक्षा क्रियते तदैतद् गुणस्थानकं प्रतिपन्नानामनन्तान्यध्यवसायस्थानानि कस्मान्न भवन्ति अनन्तजीवैरस्य प्रतिपन्नत्वादनन्तैरेव च प्रतिपत्स्यमानत्वादिति। सत्यम् स्यादेवं यदि तत्प्रतिपत्तृणां सर्वेषां पृथक्पृथग् भिन्नान्येवाध्यवसायस्थानानि स्युः, तच्च नास्ति, बहूनामेकाध्यवसायस्थानवर्तित्वादपीति। x x युगपदेतद् गुणस्थानप्रविष्टानां च परस्परमध्यवसायस्थानव्यावृत्तिलक्षणा निवृत्तिरप्यस्तीति निवृत्तिगुणस्थानकमप्येतदुच्यते।। अभि. रा. को. (अपुव्वकरणगुणद्वाण) इति। किमिति नामनिर्देशो न कृतश्चेन्न सामर्थ्यलभ्यत्वात्। अक्षपकानुपशकानां कथं तद्व्यपदेशश्चेन्न, भाविनि भूतवदुप -

उसका फिरसे इस सूत्रमें ग्रहण करना निरर्थक है?

समाधान -- ऐसा नहीं है, क्योंकि, यहां पर 'सन्ति' पदका दूसरा ही अर्थ लिया गया है।

शंका -- वह दूसरा अर्थ किस प्रकारका है?

समाधान -- पहले जो 'सन्ति' पद आया है वह गुणस्थानोंके अस्तित्वका प्रतिपादक है, और यह संयतोंमें क्षपक और उपशमक भावकेभिन्न भिन्न अधिकरणपनेके बतानेके लिये है।

जिन्होंने अपूर्वकरणरूप परिणामोंमें विशुद्धिको प्राप्त कर लिया है ऐसे क्षपक और उपशमक संयमी जीव होते हैं, और ये सब मिलकर एक अपूर्वकरण गुणस्थान बनता है।

शंका -- तो फिर यहां पर इस प्रकार नामनिर्देश क्यों नहीं किया?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, यह बात तो सामर्थ्यसे ही प्राप्त हो जाती है। अर्थात् अपूर्वकरणको प्राप्त हुए उन सब क्षपक और उपशमक जीवोंके परिणामोंमें अपूर्वपनेकी अपेक्षा समानता पाई जाती है, इसलिये वे सब मिलकर एक अपूर्वकरण गुणस्थान होता है यह अपने आप सिद्ध है।

शंका -- आठवें गुणस्थानमें न तो कर्मोंका क्षय ही होता है और न उपशम ही, फिर इस गुणस्थानवर्ती जीवोंको क्षपक और उपशमक कैसे कहा जा सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, भावी अर्थमें भूतकालीन अर्थके समान उपचार कर लेनेसे आठवें गुणस्थानमें क्षपक और उपशमक व्यवहारकी सिद्धि हो जाती है।

शंका -- इस प्रकार मानने पर तो अतिप्रसंग दोष प्राप्त हो जायगा?

-----  
चारतस्तत्सिद्धेः। सत्येवमतिप्रसङ्गः स्यादिति चेन्न, असति प्रतिबन्धरि मरणे१ (१ उपशमश्रेण्यारोहकापूर्वकरणस्य प्रथमभागे मरणं नास्तीति आगमः। जी. प्र.। मरणपूणम्मि णियट्ठीपढमे णिद्दा तहेव पयला य, गो. क. ९९.। अतो नियमेन अम्रियमाणाः प्रथमभागवर्तिनोऽपूर्वकरणाः द्वितीयादिभागेषु च आयुषि सति जीवन्तोऽपूर्वकरणाः, उपशमश्रेण्यां चारित्रमोहं उपशमयन्ति अतएवोपशमका इत्युच्यन्ते। गो. जी., मं. प्र., टी. ५५.) नियमेन चारित्रमोहक्षपणोपशमकारिणां तदुन्मुखानामुपचारभाजामुपलम्भात्। क्षपणोपशमननिबन्धनत्वाद् भिन्नपरिणामानां कथमेकत्वमिति चेन्न क्षपकोपशमक-परिणामानामपूर्वत्वं प्रति साम्यात् देकत्वोपपत्तेः। पञ्चसु गुणेषु कोऽत्रतनगुणश्चेत्क्षपकस्य क्षायिकः, उपशमस्योपशमिकः। कर्मणां क्षयोपशमाभ्यामभावे कथं तयोस्तत्र तु क्षपकस्य क्षायिको भावः, दर्शनमोहनीयक्षयमविधाय क्षपकश्रेण्यारोहणानुपपत्तेः। उपशमकस्योपशमिकः

-----  
समाधान -- नहीं, क्योंकि, प्रतिबन्धक मरणके अभावमें नियमसे चारित्रमोहका उपशम करनेवाले तथा चारित्रमोहका क्षय करनेवाले अतएव उपशमन और क्षपणके सन्मुख हुए और उपचारसे क्षपक या उपशमके संज्ञाको प्राप्त होनेवाले जीवोंके आठवें गुणस्थानमें भी क्षपक या उपशमक संज्ञा बन जाती है।

विशेषार्थ -- क्षपकश्रेणीमें तो मरण होता ही नहीं है, इसलिये वहां प्रतिबन्धक मरणका सर्वथा अभाव होनेसे क्षपकश्रेणीके आठवें गुणस्थानवाला आगे चलकर नियमसे चारित्रमोहनीयका क्षय करनेवाला है। अतः क्षपकश्रेणीके आठवें गुणस्थानवर्ती जीवके क्षपक संज्ञा बन जाती हैं। तथा उपशमश्रेणीस्थ आठवें गुणस्थानके पहले भागमें तो मरण नहीं होता है। परंतु द्वितीयादिक भागोंमें मरण संभव है, इसलिये यदि ऐसे जीवके द्वितीयादिक भागोंमें मरण न हो तो वह भी नियमसे चारित्रमोहनीयका उपशम करता है। अतः इसके भी उपशमक संज्ञा बन जाती है।

शंका -- क्षपणनिमित्तक परिणाम भिन्न हैं और उपशमननिमित्तक परिणाम भिन्न हैं, उनमें एकत्व कैसे हो सकता है?

समाधान -- नहीं क्योंकि, क्षपक और उपक्षमक परिणामोंमें अपूर्वपनेकी अपेक्षा साम्य होनेसे एकत्व बन जाता है।

शंका -- पांच प्रकारके भावोंमेंसे इस गुणस्थानमें कौनसा भाव पाया जाता है?

समाधान -- क्षपकके क्षायिक और उपशमकके औपशमिक भाव पाया जाता है।

शंका -- इस गुणस्थानमें न तो कर्मोंका क्षय ही होता है और न उपशम ही होता है, ऐसी अवस्थामे यहां पर क्षायिक या औपशमिक भावका सद्भाव कैसे हो सकता है?

समाधान --- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, इस गुणस्थानमें क्षायिक और औपशमिक भावका सद्भाव उपचारसे माना गया है।

क्षायिको वा भावः, दर्शनमोहोपशमक्षयाभ्यां विनोपशमश्रेण्यारोहणानुपलम्भात् । उक्तं च --

भिण्ण-समय-द्विएहि दु जीवेहि ण होइ सव्वदा सरिसो ।

करणेहि एक्क-समय-द्विएहि सरिसो विसरियो य१ (१ गो. जी. ५२.) ॥११६॥

एदम्हि गुणद्वाणे विसरिस-समय-द्विएहि जीवेहि ।

पुव्वमपत्ता जम्हा होंति अपुव्वा हु परिणामा२ (२ प्रा. प्रं. १, १८ । गो.जी. ५१.) ॥११७॥

तारिस-परिणाम-द्विय-जीवा हु जिणेहि गलिय-तिमिरेहि ।

मोहस्स पुव्वकरणा खवणुवसमणुज्जया भणिया३ (३ प्रा. पं. १, १९ । गो. जी. ५४.)

॥११८॥

इदानीं बादरकषायेषु चरमगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह ---

अणियट्ठि-बादर-सांपराइय-पविट्ठ-सुद्धि-संजदेसु अत्थि उवसमा खवा ॥११७॥

समानसमयावस्थितजीवपरिणामानां निर्भेदेन वृत्तिः निवृत्तिः । अथवा निवृत्तिः (४ निवृत्तिर्व्यावृत्तिः परिणामानां विसदृशभावेन परिणतिरित्यनर्थान्तरम् । जयध. अ. पृ. १०७४.)

सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा तो क्षपकके क्षायिकभाव होता है, क्योंकि, जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है वह क्षपक श्रेणीपर नहीं चढ सकता है। और उपशमकके औपशमिक या क्षायिकभाव होता है, क्योंकि, जिसने दर्शनमोहनीयका उपशम क्षय नहीं किया है वह उपशमश्रेणीपर नहीं चढ सकता है। कहा भी है --

अपूर्वकरण गुणस्थानमें भिन्न-समयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी अपेक्षा कभी भी सदृशता नहीं पाई जाती है, किन्तु एक-समयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी अपेक्षा सदृशता और विसदृशता दोनों ही पाई जाती है  
॥११६॥

इस गुणस्थानमें विसदृश अर्थात् भिन्न-भिन्न समयमें रहनेवाले जीव, जो पूर्वमें कभी भी नहीं प्राप्त हुए थे ऐसे अपूर्व परिणामोंको ही धारण करते हैं, (इसलिये इस गुणस्थानका नाम अपूर्वकरण है।)  
॥११७॥

पूर्वोक्त अपूर्व परिणामोंको धारण करनेवाले जीव मोहनीय कर्मकी शेष प्रकृतियोंके क्षपण अथवा उपशमन करनेमें उद्यत होते हैं, ऐसा अज्ञानरूपी अन्धकारसे सर्वथा रहित जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥११८॥

अब बादर-कषायवाले गुणस्थानोंमें अन्तिम गुणस्थानके प्रतिपादन करनेकेलिय सूत्र कहते हैं -

अनिवृत्ति-बादर-सांपरायिक-प्रविष्ट-शुद्धि-संयतोंमें उपशमक भी होते हैं और क्षपक भी होते हैं ॥

१७॥

समान-समयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी भेदरहित वृत्तिको निवृत्ति कहते हैं अथवा

-----

व्यावृत्तिः न विद्यते निवृत्तिर्येषां तेऽनिवृत्तयः। अपूर्वकरणाश्च तादृक्षाः केचित्सन्तीति तेषामप्ययं व्यपदेशः प्राप्नोतीति चेन्न, तेषां नियमाभावात्। समानसमयस्थितजीवपरिणामानामिति कथमधिगम्यत इति चेन्न, 'अपूर्वकरण' इत्यनुवर्तनादेव द्वितीयादिसमयवर्तिजीवैः सह परिणामपेक्षया भेदसिद्धेः। साम्परायाः कषायाः, बादराः स्थूलाः, बादराश्च ते साम्परायाश्च बादरसाम्परायाः। अनिवृत्तयश्च ते बादरसाम्परायाश्च अनिवृत्तिबादरसाम्परायाः। तेषु प्रविष्टा शुद्धिर्येषां संयतानां तेऽनिवृत्तिबादर-साम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयताः। तेषु सन्ति उपशमकाः क्षपकाश्च। ते सर्वे एको गुणोऽनिवृत्तिरिति१ (१ युगपदेतद् गुणस्थानकं प्रतिपन्नानां बहूनामपि जीवानामन्योन्यमध्यवसायस्थानस्य व्यावृत्तिनस्त्यस्येति अनिवृत्तिः। समकालमेतद् गुणस्थानकमारुढस्यापरस्य यदध्यवसायस्थानं विवक्षितोऽन्योऽपि कश्चित्तद्वर्त्येवेत्यर्थः। संपरैति पर्यटति

संसारमनेनेति संपरायः कषायोदयः। x x तत्र चान्तर्मुहूर्ते यावन्तः समयास्तत्प्रविष्टानां तावन्त्येवाध्यवसायस्थानानि भवन्ति। एकसमयप्रविष्टानामेकरस्यैवाध्यवसायस्थावनस्यानुवर्तनादिति। अभि. रा. को. (अणियट्टिबादरसंपरायगुणद्व्याण)। यावन्तः परिणामास्तावन्त एव गुणाः किन्न् भवन्तीति चेन्न, तथा

निवृत्ति शब्दका अर्थ व्यावृत्ति है। अतएव जिन परिणामोंकी निवृत्ति अर्थात् व्यावृत्ति नहीं होती है उन्हें ही अनिवृत्ति कहते हैं।

शंका -- अपूर्वकरण गुणस्थानमें भी तो कितने ही परिणाम इस प्रकारके होते हैं, अतएव उन परिणामोंको भी अनिवृत्ति संज्ञा प्राप्त होनी चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, उनके इसका कोई नियम नहीं है।

शंका -- इस गुणस्थानमें जो जीवोंके परिणामोंकी भेदरहित वृत्ति बतलाई है, वह समान समयवर्ती जीवोंकी परिणामोंकी ही विवक्षित है यह कैसे जाना?

समाधान -- 'अपूर्वकरण' पदकी अनुवृत्तिसे ही यह सिद्ध होता है, कि इस गुणस्थानमें प्रथमादि समयवर्ती जीवोंका द्वितीयादि समयवर्ती जीवोंके साथ परिणामोंकी अपेक्षा भेद है। (अतएव इससे यह तात्पर्य निकल आता है कि 'अनिवृत्ति' पदका सम्बन्ध एकसमयवर्ती परिणामोंके साथ ही है।)

सांपराय शब्दका अर्थ कषाय है, और बादर स्थूलको कहते हैं, इसलिये स्थूलकषायोंको बादर-सांपराय कहते हैं। और अनिवृत्तिरूप बादर सांपरायको अनिवृत्तिबादरसांपराय कहते हैं। उन अनिवृत्तिबादरसांपरायरूप परिणामोंमें जिन संयतोंकी विशुद्धि प्रविष्ट हो गई है उन्हें अनिवृत्तिबादरसांपरायप्रविष्टशुद्धिसंयत कहते हैं। ऐसे संयतोंमें उपशमक और क्षपक दोनों प्रकारके जीव होते हैं। और उन सब संयतोंका मिलकर एक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान होता है।

शंका -- जितने परिणाम होते हैं, उतने ही गुणस्थान क्यों नहीं होते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जितने परिणाम होते हैं, उतने ही गुणस्थान यदि माने

द्रव्यार्थिकनयसमाश्रयणात्। बादरग्रहणमन्तदीपकत्वाद् गताशेषगुणस्थानानि बादरकषायाणीति प्रज्ञापनार्थम् 'सति संभवे व्यभिचारे च विशेषणमर्थवद्भवति' इति न्यायात्। संयतग्रहणमनर्थकमिति चेन्नैष दोषः,

संयमस्य पञ्चस्वपि गुणेषु सम्भव एव न व्यभिचार इत्यस्यान्यस्याधिगमोपायस्याभावतस्तदुक्तेः। आद्यं संयतग्रहणमनुवर्तते, ततस्तदवसीयत इति चेत्तर्ह्यस्तु जडजनानुग्रहार्थमिति। यद्येवमुपशान्तकषायादिष्वपि संयतग्रहणमस्त्विति चेन्न, सकषयत्वेन संयतानामसंयतैः साधर्म्यमस्तीति मन्दधियामधः संशयोत्पत्तिसम्भवात्। नोपशान्तकषायादिषु मन्दधियामप्यारेकोत्पद्यते। क्षीणोपशान्तकषायाः संयताः, भावतोऽसंयतैस्संयतानां साधर्म्याभावात्।

-----

जाय तो व्यवहार ही नहीं चल सकता है, इसलिये द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा नियत-संख्यावाले ही गुणस्थान कहे गये हैं।

सूत्रमें जो 'बादर' पदका ग्रहण किया है, वह अन्तदीपक होनेसे पूर्ववर्ती समस्त गुणस्थान बादरकषाय हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिये ग्रहण किया है, ऐसा समझना चाहिये, क्योंकि, जहां पर विशेषण संभव हो अर्थात् लागू पडता हो और न देने पर व्यभिचार आता हो, ऐसी जगह दिया गया विशेषण सार्थक होता है, ऐसा न्याय है।

शंका -- इस सूत्रमें संयत पदका ग्रहण करना व्यर्थ है?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, संयम पांचों ही गुणस्थानोंमें संभव है, इसमें कोई व्यभिचार दोष नहीं आता है, इस प्रकार जाननेका दूसरा कोई उपाय नहीं होनेसे यहां संयम पदका ग्रहण किया है।

शंका -- 'पमत्तसंजदा' इस सूत्रमें ग्रहण किये गये संयत पदकी यहां अनुवृत्ति होती है, और उससे ही उक्त अर्थका ज्ञान भी हो जाता है, इसलिये फिरसे इस पदका ग्रहण करना व्यर्थ है?

समाधान -- यदि ऐसा है, तो संयत पदका यहां पुनः प्रयोग मन्दबुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिये समझना चाहिये।

शंका -- यदि ऐसा है, तो उपशान्तकषाय आदि गुणस्थानोंमें भी संयत पदका ग्रहण करना चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, दशवें गुणस्थानतक सभी जीव कषायसहित होनेके कारण, कषायकी अपेक्षा संयतोंकी असंयतोंके साथ सदृशता पाई जाती है, इसलिये नीचेके दशवें गुणस्थानतक मन्दबुद्धि-जनोंको संशय उत्पन्न होनेकी संभावना है। अतः संशयके निवारणके लिये संयत विशेषण देना आवश्यक है।

किन्तु ऊपरके उपशान्तकषाय आदि गुणस्थानोंमें मन्दबुद्धिजनोंको भी शंका उत्पन्न नहीं हो सकती है, क्योंकि, वहाँ पर संयत क्षीणकषाय अथवा उपशान्तकषायही होते हैं, इसलिये भावोंकी अपेक्षा भी संयतोंकी असंयतोंसे सदृशता नहीं पाई जाती है। अतएव यहाँ पर संयत विशेषण देना आवश्यक नहीं है।

काश्चित्प्रकृतीरुपशमयति, काश्चिदुपरिष्ठादुपशमयिष्यतीति औपशमिकोऽयं गुणः। काश्चित् प्रकृतीः१ (१ नरकव्दिकंतिर्यग्दिकं विकलत्रयं स्त्यानगृध्दित्रयमुद्योतः आतपः एकेन्द्रियं साधारणं सूक्ष्मं स्थावरं चेति षोडश अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकषाया अष्टौ, क्रमेण षण्ढवेदः स्त्रीवेदो नोकषायषट्कं पुंवेदः संज्वलनक्रोधः संज्वलनमानः संज्वलनमाया एताः स्थूले अनिवृत्तिकरणे (सत्त्व-) व्युच्छिन्ना भवन्ति। गो. क., जी. प्र., टी. ३३८-३३९.) क्षपयति काश्चिदुपरिष्ठात् क्षपयिष्यतीति क्षायिकश्च। सम्यक्त्वापेक्षया चारित्रमोहक्षपकस्य क्षायिक एव गुणः, तत्रान्यस्यासम्भवात्। उपशमकस्यौपशमिकः क्षायिकश्च, उभयोरपि तत्राविरोधात्। क्षपकोपशमकयोर्द्वित्वं किमिति नेष्यत इति चेन्न, गुणनिबन्धनानिवृत्तिपरिणामानां साम्यप्रदर्शनार्थं तदेकत्वोक्तेः२ (२ मु. तदेकत्वापपत्तेः।)। उक्तं च -

एकस्मिकाल-समए संटाणादीहि३ (३ प्रा. पं. १, २०। गो. जी., मं. प्र., टी. ५६.)

जह णिवट्टंति।

जह णिवट्ठंति तह च्चिय परिणामेहिं मिहो जे हु ॥११९॥

होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जस्स एकक४ (४ मु. जेसिमेक्क.) परिणामा।

विमलयर-झाण-हुयवह-सिहाहि णिद्धड्ढ५ (५ मु. निद्धध्द।) कम्म-वणा६ (६ प्रा. पं.

१,२१। गो. जी. ५७) ॥१२०॥

इस गुणस्थानमें जीव मोहकी कितनी ही प्रकृतियोंका उपशमन करता है, और कितनी ही प्रकृतियोंका आगे उपशम करेगा, इस अपेक्षासे यह गुणस्थान औपशमिक है। और कितनी ही प्रकृतियोंका क्षय करता है, तथा कितनी ही प्रकृतियोंका आगे क्षय करेगा, इस दृष्टिसे क्षायिक भी है। सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा चारित्रमोहका क्षय करनेवालेके यह गुणस्थान क्षायिकभावरूप ही है, क्योंकि, क्षपकश्रेणीमें दूसरा भाव संभव नहीं है। तथा चारित्रमोहनीयका उपशम करनेवालेके यह गुणस्थान औपशमिक और क्षायिक दोनों भावरूप है, क्योंकि, उपशमश्रेणीकी अपेक्षा वहाँ पर दोनों भाव संभव हैं।

शंका -- क्षपकका स्वतन्त्र गुणस्थान और उपशमका स्वतन्त्र गुणस्थान, इस तरह अलग अलग दो गुणस्थान क्यों नहीं कहे गये है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, इस गुणस्थानके कारणभूत अनिवृत्तिरूप परिणामोंकी समानता दिखानेके लिये उन दोनोंमें एकता कही है। अर्थात् उपशमक और क्षपक इन दोनोंमें अनिवृत्तिरूप परिणामोंकी अपेक्षा समानता है। कहा भी है --

अन्तर्मुहूर्तमात्र अनिवृत्तिकरणके कालमेंसे किसी एक समयमें रहनेवाले अनेक जीव जिस प्रकार शरीरके आकार, वर्ण आदि रूपसे परस्पर भेदको प्राप्त होते हैं, उस प्रकार जिन परिणामोंके द्वारा उनमें भेद नहीं पाया जाता है उनको अनिवृत्तिकरण परिणामवाले कहते हैं। और उनके प्रत्येक समयमें उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धिसे बढ़ते हुए एकसे ही (समान विशुद्धिको लिये हुए) परिणाम पाये जाते हैं। तथा वे अत्यन्त निर्मल ध्यानरूप अग्निकी

-----  
इदानीं कुशीलेषु पाश्चात्यगुणप्रतीपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

सुहुम-सांपराइय-पविट्ट-सुद्धि-संजदेसु अत्थि उवसमा खवा ॥१८॥

सूक्ष्मश्चासौ साम्परायश्च सूक्ष्मसाम्परायः। तं प्रविष्टा शुद्धिर्येषां संयतानां ते सूक्ष्मसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयताः। तेषु सन्ति उपशमकाः क्षपकाश्च। सर्वे त एकगुणः१ (१ मु. एको गुणः १) सूक्ष्मसाम्परायत्वं प्रत्यभेदात्। अपूर्व इत्यनुवर्तते अनिवृत्तिरिति च। ततस्ताभ्यां सूक्ष्मसाम्परायो२ (२ संज्वलनलोभस्य अणूनसंख्येयतमस्य खण्डस्यासंख्येयानि खण्डानि वेदयमानोऽनुभवन् उपशमकः क्षपको वा भवति। सोऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावत्सूक्ष्मसंपरायो भण्यते। X X सुहुमसंपराइयं जो वच्चति सो सुहुमसंपरागो। सुहुमं नाम थोवं। कहं थोव? आउयमोहणिज्जवज्जाओ छ कम्मपयडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ अप्पकालद्धितिकाओ महाणुभावाओ अप्पदेसगाओ सुहुमसंपरागस्स बज्झाति। एवं थोवं संपराइयं कम्मं तं स बज्झाति। सुहुमो संपरागो वा जस्स सो सुहुमसंपरागो, सो य असंखेज्जसमइओ अंतोमुहुत्तिओ विसुज्जामाणपरिणामो वा पडियत्तमाणपरिणामो वा भवति ति। अभि. रा. को. [सुहुमसंपराय] विशेषयितव्यः, अन्यथातीतगुणेभ्यस्तस्याधिक्यानुपपत्तेः।

-----  
शिखाओंसे कर्म-वनको भस्म करनेवाले होते हैं ॥११९-१२०॥

अब कुशील जातिके मुनियोंके अन्तिम गुणस्थानके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं--  
सूक्ष्म-सांपराय-प्रविष्ट-शुद्धी-संयतोंमें उपशम और क्षपक दोनों हैं ॥१८॥

सूक्ष्मकषायको सूक्ष्मसांपराय कहते हैं। उसमें जिन संयतोंकी शुद्धिने प्रवेश किया है उन्हें सूक्ष्म-सांपराय-प्रविष्ट-शुद्धी-संयत कहते हैं। उनमें उपशमक और क्षपक दोनों होते हैं। और सूक्ष्मसांपरायकी अपेक्षा उनमें भेद नहीं होनेसे उपशमक और क्षपक इन दोनोंका एक ही गुणस्थान होता है। इस गुणस्थानमें अपूर्व और अनिवृत्ति इन दोनों विशेषणोंकी अनुवृत्ति होती है। इसिलिये ये दोनों विशेषण भी सूक्ष्म-सांपराय-शुद्धि-संयतके साथ जोड़ लेना चाहिये। अन्यथा पूर्ववर्ती गुणस्थानोंसे उस गुणस्थानकी कोई भी विशेषता नहीं बन सकती है।

विशेषार्थ -- यदि दशवें गुणस्थानमें अपूर्व विशेषणकी अनुवृत्ति नहीं होगी तो उसमें प्रतिसमय अपूर्व अपूर्व परिणामोंकी सिद्धि नहीं हो सकेगी। और अनिवृत्ति विशेषणकी अनुवृत्ति नहीं मानने पर एक समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें समानता और कर्मोंके क्षपण और उपशमनकी योग्यता सिद्ध नहीं होगी। इसलिये पूर्व गुणस्थानोंसे इसमें सर्वथा-भिन्न जातिके ही परिणाम होते हैं इस बातके सिद्ध करनेके लिये अपूर्व और अनिवृत्ति इन दो विशेषणोंकी अनुवृत्ति कर लेना चाहिये। इस प्रकार इस गुणस्थानमें अपूर्वता, अनिवृत्तिपना और सूक्ष्मसांपरायपनारूप विशेषता सिद्ध हो जाती है।

-----  
प्रकृतीः काश्चित्क्षपयति१ (१ सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मसंज्वलनलोभः, गो. क., जी. प्र. टी. ३३९.) क्षपयिष्यति  
क्षपिताश्चेति क्षायिकगुणः। काश्चिदुपशमर्यात उपशमयिष्यति उपशमिताश्चेत्यौपशमिकगुणः।  
सम्यग्दर्शनापेक्षया क्षपकः क्षायिकगुणः, उपशमकः औपशमिकगुणः क्षायिकगुणो वा, व्दाभ्यामपि  
सम्यक्त्वाभ्यामुपशम--श्रेण्यारोहणसम्भवात्। संयतग्रहणस्य पूर्ववत्साफल्यमुपदेष्टव्यम् उक्तं च ---

पुष्पापुष्प-फद्दय-अणुभागादो अणंत-गुण-हीणे।

लोहाणुम्हि द्वियओ हंद सुहुम-संपराओ सोर (२ प्रा. पं. १, २३।

पुष्पापुष्पफड्ढयबादरसुहुमगयकिट्टिअणुभागा।

हीणकमाणंतगुणेणवरादु वरं च हेड्डस्स ॥ गो. जी. ५९.) ॥१२१॥

साम्प्रतमुपशमश्रेण्यन्त्यगुणप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

उवसंत-कसाय-वीयराय-छदुमत्था ॥१९॥

उपशान्तः कषायो येषां त उपशान्तकषायाः। वीतो विनष्टो रागो येषां ते वीतरागाः। छद्म इ  
पानदृगावरणे, तत्र तिष्ठन्तीति छद्मस्थाः। वीतरागाश्च ते छद्मस्थाश्च वीतरागछद्मस्थाः। एतेन  
सरागछद्मस्थनिराकृतिरवगन्तव्या। उपशान्त-

-----  
इस गुणस्थानमें जीव कितनी ही प्रकृतियोंका क्षय करता है, आगे क्षय करेगा और पूर्वमें क्षय कर  
चुका, इसलिये इसमें क्षायिकभाव है। तथा कितनी ही प्रकृतियोंका उपशम करता है, आगे उपशम करेगा  
और पहले उपशम कर चुका, इसलिये इसमें औपशमिक भाव है। सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा क्षपक श्रेणीवाला  
क्षायिकभावसहित है। और उपशमश्रेणीवाला औपशमिक तथा क्षायिक इन दोनों भावोंसे युक्त है, क्योंकि,  
दोनों ही सम्यक्त्वोंसे उपशमश्रेणीका चढना संभव है। इस सुत्रमें ग्रहण किये गये संयत पदकी पूर्ववत्  
अर्थात् अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें बतलाई गई संयत पदकी सफलताके समान सफलता समझ लेना चाहिये।  
कहा भी है ---

पूर्वस्पर्धक और अपूर्वस्पर्धकके अनुभागसे अनन्तगुणे हीन अनुभागवाले सूक्ष्मलोभमें जो स्थित है उसे  
सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती जीव समझना चाहिये ॥१२१॥

अब उपशमश्रेणीके अन्तिम गुणस्थानके प्रतिपादनार्थ आगेका सूत्र कहते हैं ---

सामान्यसे उपशान्त-कषाय-वीतराग-छद्मस्थ जीव हैं ॥१९॥

जिनकी कषाय उपशान्त हो गई है उन्हें उपशान्तकषाय कहते हैं। जिनका राग नष्ट हो गया है उन्हें  
वीतराग कहते हैं। छद्म ज्ञानावरण और दर्शनावरणको कहते हैं, उनमें जो रहते हैं उन्हें छद्मस्थ कहते हैं।  
जो वीतराग होते हुए भी छद्मस्थ होते हैं उन्हें वीतरागछद्मस्थ कहते हैं। इसमें आये हुए वीतराग विशेषणसे  
दशम गुणस्थान तकके सरागछद्मस्थोंका निराकरण समझना चाहिये। जो उपशान्तकषाय होते हुए भी  
वीतरागछद्मस्थ होते हैं उन्हे

-----  
कषायाश्च ते वीतरागछद्मस्थाश्च उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थाः१ (१ अस्मिंश्च गुणस्थानेऽष्टाविंशतिरपि  
मोहनीयप्रकृतयः उपशान्ताः ज्ञातव्याः। उपशान्तकषायश्च जघन्येनैकं समयं भवति, उत्कर्षेण त्वन्तर्मुहूर्तं  
कालं यावत्। तत ऊर्ध्वं नियमादसौ प्रतिपतति। प्रतिपातश्च व्देधा, भवक्षयेण अध्दाक्षयेण च। तत्र भवक्षयो  
म्रियमाणस्य, अध्दाक्षय उपशान्ताध्दायां समाप्तायाम्। अध्दाक्षयेण च प्रतिपतति यथैवारुढस्तथैव प्रतिपतति

यत्र यत्र बन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिन्नास्तत्र तत्र प्रतिपतता सता ते आरभ्यन्त इति यावत् ॥ x x यः पुनर्भवक्षयेण प्रतिपतति स प्रथमसमये सर्वाण्यपि बन्धनादीनि करणानि प्रवर्तयतीति विशेषः । अभि. रा. को. । (उवसंतकसायवीयरागच्छउमत्थगुणद्वाण) । एतेनोपरितनगुणव्युदासोऽवगन्तव्यः ।

एतस्योपशमिताशेषकषायत्वादौपशमिकः सम्यक्त्वापेक्षया क्षायिकः औपशमिको वा गुणः । उक्तं च

सकयगहलं जलं वा सरए सरवाणियं व णिम्मलए२ (२ मु. णिम्मलयं) ।

सयलोवसंत-मोहो उवसंत-कसायओ होई३ (३ प्रा. पं. १, २४ । गो. जी. ६१. परं च

तत्र प्रथमचरणे 'कदक-फल-जुद-जलं-वा' इति पाठः ।) ॥१२२॥

निर्ग्रन्थगुणप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

खीण-कसाय-वीयराय-छदुमत्था<sup>४</sup> (४ क्षीणा अभावमापन्नाः कषाया यस्स स क्षीणकषायः ।

तच्चान्येष्वपि गुणस्थानकेषु क्षपकश्रेणीवदारोक्तयुक्त्या क्वापि कियतामपि कषायाणां क्षीणत्वसंभवात् क्षीणकषायव्यपदेशः संभवति । ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणं, क्षीणकषायवीतरागत्वं च केवलिनोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं छद्मस्थग्रहणम् । यद्वा छद्मस्थस्य रागोऽपि भवतीति तदपनोदार्थं वीतरागग्रहणं । वीतरागश्चासौ छद्मस्थश्च वीतरागच्छद्मस्थः स चोपशान्तकषायोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं क्षीणकषायग्रहणम् । अभि. रा. को. [खीणकसायवीयराच्छउमत्थ] ॥२०॥

क्षीणः कषायो येषां ते क्षीणकषायाः । क्षीणकषायाश्च ते वीतरागाश्च,

-----

उपशान्त-कषाय-वीतराग-छद्मस्थ कहते हैं । इससे (उपशान्तकषाय विशेषणसे) आगेके गुणस्थानोंका निराकरण समझना चाहिये ।

इस गुणस्थानमें संपूर्ण कषायें उपशान्त हो जाती हैं, इसलिये इसमें औपशमिक भाव है । तथा सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा औपशमिक और क्षायिक दोनों भाव हैं । कहा भी है ---

निर्मली फलसे युक्त निर्मल जलकी तरह, अथवा शरद् ऋतुमें निर्मल होनेवाले सरोवरके जलकी तरह, संपूर्ण मोहनीय कर्मके उपशमसे उत्पन्न होनेवाले निर्मल परिणामोंको उपशान्तकषाय गुणस्थान कहते हैं ॥१२२॥

अब निर्ग्रन्थगुणस्थानके प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

सामान्यसे क्षीण-कषाय-वीतराग-छन्नस्थ जीव हैं ॥२०॥

जिनकी कषाय क्षीण हो गई है उन्हें क्षीणकषाय कहते हैं। जो क्षीणकषाय होते हुए

क्षीणकषाय-वीतरागाः। छन्ननि आवरणे तिष्ठन्तीति छन्नस्थाः। क्षीणकषायवीतरागाश्च ते छन्नस्थाश्च क्षीणकषायवीतरागछन्नस्थाः। छन्नस्थग्रहणमन्तदीपकत्वादतीता-शेषगुणानां सावरणत्वस्य सूचकमित्यवगन्तव्यम्। क्षीणकषाया हि वीतरागा एव, व्यभिचाराभावाद्धीतराग्रहणमनर्थकमिति चेन्न, नामादिक्षीणकषायविनिवृत्ति-फलत्वात्। पञ्चसु गुणेषु कस्मादस्य प्रादुर्भाव इति चेद्द्रव्यभावद्वैविध्यादुभयात्मकमोहनीयस्य निरन्वयविनाशात्क्षायिकगुणनिबन्धनः। उक्तं च ---

णिस्सेस-खीण-मोहो-फलिहामल१ (१ मु. फलियामल) -भायणुदय-समचित्तो ॥

खीण-कसाओ-भण्णइ णिग्गंथो२ (२ प्रा. पं. १, २५। ग्रन्थान्ति रचयन्ति संसारकारणं कर्मबन्धमिति ग्रन्थाः परिग्रहाः मिथ्यात्ववेदादयः अन्तरंगाश्चतुर्दश, बहिरंगाश्च क्षेत्रादयो दश, तेभ्यो निष्प्रान्तः सर्वात्मना निवृत्तो निर्ग्रन्थ इति। गो. जी., मं. प्र., टी. ६२.) वीयराएहिं ॥१२३॥

स्नातकगुणप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

सजोगकेवली ॥२१॥

वीतराग होते हैं उन्हें क्षीणकषायवीतराग कहते हैं। जो छन्न अर्थात् ज्ञानावरण और दर्शनावरणमें रहते हैं उन्हें छन्नस्थ कहते हैं। जो क्षीणकषाय वीतराग होते हुए छन्नस्थ होते हैं उन्हें क्षीण-कषाय-वीतराग-छन्नस्थ कहते हैं। इस सूत्रमें आया हुआ छन्नस्थ पद अन्तदीपक है, इसलिये उसे पूर्ववर्ती समस्त गुणस्थानोंके सावरणपनेका सूचक समझना चाहिये।

शंका -- क्षीणकषाय जीव वीतराग ही होते हैं, इसमें किसी प्रकारका भी व्यभिचार नहीं आता, इसलिये सूत्रमें वीतराग पदका ग्रहण करना निष्फल है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, नाम, स्थापना आदि रूप क्षीणकषायकी निवृत्ति करना यही इस सूत्रमें वीतराग पदके ग्रहण करनेका फल है। अर्थात् इस गुणस्थानमें नाम, स्थापना और द्रव्यरूप क्षीणकषायका ग्रहण नहीं है, किंतु भावरूप क्षीणकषायोंका ही ग्रहण है, इस बातके प्रगट करनेके लिये सूत्रमें वीतराग पद दिया है।

शंका -- पांच प्रकारके भावोंमेंसे किस भावसे इस गुणस्थानकी उत्पत्ति होती है?

समाधान -- मोहनीय कर्मके दो भेद हैं---द्रव्यमोहनीय और भावमोहनीय। इस गुणस्थानके पहले दोनों प्रकारके मोहनीय कर्मोंका निरन्वय (सर्वथा) नाश हो जाता है, अतएव इस गुणस्थानकी उत्पत्ति क्षायिक गुणसे है। कहा भी है-

जिसने संपूर्ण अर्थात्, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्धरूप मोहनीय कर्मको नष्ट कर दिया है, अतएव जिसका चित्त (आत्मा) स्फटिकमणिके निर्मल भाजनमें रखे हुए जलके समान निर्मल है, ऐसे निर्ग्रन्थको वीतरागदेवने क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती कहा है ॥१२३॥

अब स्नातकोंके गुणस्थानके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

सामान्यसे सयोगकेवली जीव हैं ॥२१॥

केवलं केवलज्ञानम्। कथं नामैकदेशात्सकलनाम्ना प्रतिपद्यमानस्यार्थस्यावग१-(१ स्यावगम इति।) तिरिति चेन्न, बलदेवशब्दवाच्यस्यार्थस्य तदेकदेशदेवशब्दादपि प्रतीयमानस्योपलम्भात्। न च दृष्टेऽनुपपन्नता, अव्यवस्थापत्तेः। केवलमसहायमिन्द्रियालोकमनमस्कारनिरपेक्षम्, तदेषामस्तीति केवलिनः। मनोवाक्कायप्रवृत्तिर्योगः, योगेन सह वर्तन्त इति सयोगाः। सयोगाश्च ते केवलिनश्च सयोगकेवलिनः। सयोगग्रहणमधस्तनसकलगुणानां सयोगत्वप्रतिपादकम्, अन्तदीपकत्वात्। क्षपिताशेषघातिकर्मत्वान्निःशक्तीकृतवेदनीयत्वान्नाष्टकर्मवयवषष्टिकत्वाद्वा क्षायिकगुणः। उक्तं च ---

केवलणाण-दिवायर-किरण-कलाव-प्पणासियण्णाणो २ (२ अनेन सयोगभट्टारकस्य भव्यलोकोपकारकत्वलक्षणपरार्थसंपत्प्रणीता। गो. जी., जी. प्र., टी. ६३.) ।

णव-केवल-लध्दुग्गम-सुजणिय-परमप्प-ववएसो ३ (३ प्रा. प. १, २७। (अनेन पदेन) भगवदर्हत्परमेष्ठिनोऽनन्त-ज्ञानादिलक्षणस्थार्थसंपत् प्रदर्शिता। गो. जी., जी. प्र., टी. ६३.) ॥१२४॥

केवल पदसे यहां पर केवलज्ञानका ग्रहण किया है।

शंका -- नामके एकदेशके कथन करनेसे संपूर्ण नामके द्वारा कहे जानेवाले अर्थका बोध कैसे संभव है।

समाधान -- नहीं, क्योंकि, बलदेव शब्दके वाच्यभूत अर्थका, उसके एकदेशरूप 'देव' शब्दसे भी बोध होना पाया जाता है। और इस तरह प्रतीति-सिद्धबातमें, 'यह नहीं बन सकता है' इस प्रकार कहना निष्फल है, अन्यथा सब जगह अव्यवस्था हो जायेगी।

जिसमें इन्द्रिय, आलोक और मनकी अपेक्षा नहीं होती है उसे केवल अथवा असहाय कहते हैं। वह केवल अथवा असहाय ज्ञान जिनके होता है, उन्हें केवली कहते हैं। मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिको योग कहते हैं। जो योगके साथ रहते हैं उन्हें सयोग कहते हैं। इस तरह जो सयोग होते हुए केवली हैं उन्हें सयोगकेवली कहते हैं। इस सूत्रमें जो सयोग पदका ग्रहण किया है वह अन्तदीपक होनेसे नीचेके संपूर्ण गुणस्थानोंके सयोगपनेका प्रतिपादक है। चारों घातिया कर्मोंके क्षय कर देनेसे, वेदनीय कर्मके निःशक्त कर देनेसे, अथवा आठों ही कर्मोंके अवयवरूप साठ उत्तर-कर्म-प्रकृतियोंके नष्ट कर देनेसे इस गुणस्थानमें क्षायिक भाव होता है।

विशेषार्थ -- यद्यपि अरहंत परमेष्ठीके चारों घातिया कर्मोंको सैतालीस, नामकर्मकी तेरह और आयुकर्मकी तीन, इस तरह त्रेसठ प्रकृतियोंका अभाव होता है। फिर भी यहां साठ कर्मप्रकृतियोंका अभाव बतलाया है। इसका ऐसा अभिप्राय समझना चाहिये कि आयुकी तीन प्रकृतियोंके नाशके लिये प्रयत्न नहीं करना पडता है। मुक्तिको प्राप्त होनेवाले जीवके एक मनुष्यायुको छोडकर अन्य आयुकी सत्ता ही नहीं पाई जाती है, इसलिये यहां पर आयुकर्मकी तीन प्रकृतियोंकी अविषका करके साठ प्रकृतियोंका नाश बतलाया गया है। कहा भी है ---

जिसका केवलज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके समूहसे अज्ञानरूपी अन्धकार सर्वथा नष्ट

-----  
असहाय-गाण-दंसण-सहिओ इदि केवली हु जोएण।

जुत्तो ति सजोगो इदि अणाइ-णिहणारिसे उत्तो१ (१ प्रा. पं. १, २९। गो. जी. ६४.)

॥१२५॥

साम्प्रतमन्त्यस्य गुणस्य स्वरूपनिरुपणार्थमर्हन्मुखोद्गतार्थं गणधरदेवग्रथितशब्दसन्दर्भं  
प्रवाहरूपतयानिधनतामा-पन्नमशेषदोषव्यतिरिक्तत्वादकलङ्कमुत्तरसूत्रं पुष्पदन्तभट्टारकः प्राह ---

अजोगकेवली ॥२२॥

न विद्यते योगो यस्य स भवत्ययोगः : (२ योगः अस्यास्तीति योगी न योगी, अयोगी, अयोगी केवलिजिनः इत्यनुवर्तनात् अयोगी चासौ केवलिजिनश्च अयोगिकेवलिजिनः। गो. जी., जी. प्र., टी १०.) । केवलमस्यास्तीति केवली। अयोगश्चासौ केवली च अयोगकेवली। केवलीत्यनुवर्तमाने पुनः केवलिग्रहणं न कर्तव्यमिति चेन्नैष दोषः, समनस्केषु ज्ञानं सर्वत्र सर्वदा मनोनिबन्धनत्वेन प्रतिपन्नं प्रतीयते च। सति चैवं नायोगिनां केवलज्ञानमस्ति, तत्र मनसोऽसत्त्वादिति विप्रति ---

-----

हो गया है, और जिसने नव केवल-लब्धियोंके प्रगट होनेसे 'परमात्मा' इस संज्ञाको प्राप्त कर लिया है, वह इन्द्रिय आदिकी अपेक्षा न रखनेवाले ऐसे असहाय ज्ञान और दर्शनसे युक्त होनेके कारण केवली और तीनों योगोंसे युक्त होनेके कारण सयोगी कहा जाता है, ऐसा अनादिनिधन आर्षमें कहा है ॥१२४-१२५॥

अब पुष्पदन्त भट्टारक अन्तिम गुणस्थानके स्वरूपके निरूपण करनेके लिये, अर्थरूपसे अरहंत-परमेष्ठीके मुखसे निकले हुए, गणधरदेवके द्वारा गूथे गये शब्द-रचनावाले, प्रवाहरूपसे कभी भी नाशको नहीं प्राप्त होनेवाले और संपूर्ण दोषोंसे रहित होनेके कारण निर्दोष ऐसे आगेके सूत्रको कहते हैं ---

सामान्यसे अयोगकेवली जीव हैं ॥२२॥

जिसके योग विद्यमान नहीं है उसे अयोग कहते हैं। जिसके केवलज्ञान पाया जाता है उसे केवली कहते हैं। जो योग रहित होते हुए केवली होता है उसे अयोगकेवली कहते हैं।

शंका -- पूर्वसूत्रसे केवली पदकी अनुवृत्ति होने पर इस सूत्रमें फिरसे केवली पदका ग्रहण नहीं करना चाहिये?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, समनस्क जीवोंके सर्व-देश और सर्व-कालमें मनके निमित्तसे उत्पन्न होता हुआ ज्ञान स्वीकार किया गया है और प्रतीत भी होता है, इस प्रकारके नियमके होनेपर, अयोगियोंके केवलज्ञान नहीं होता है, क्योंकि, यहां पर मन नहीं पाया जाता है, इस प्रकार विवादग्रस्त शिष्यको अयोगियोंमें केवलज्ञानके अस्तित्वके प्रतिपादनके लिये

-----

पन्नस्य शिष्यस्य तदस्तित्वप्रतिपादनफलत्वात्। कथं वचनात्तदस्तित्वमवगम्यत इति चेच्चक्षुषा स्तम्भादेरस्तित्वं कथमवगम्यते? तत्प्रमाणत्वान्यथानुपपत्तेश्चक्षुषा समुपलब्धमस्तीति चेत्तर्ह्यत्रापि वचनस्य प्रामाण्यान्यथानुपपत्तेः समस्ति वचने वाच्यमिति समानमेतत्। वचनस्य प्रामाण्यसिद्धम्, १ (१ मु. मसिद्धं तस्य

क्वचित् ।) क्वचिद् विसंवाददर्शनादिति चेन्न, चक्षुषोऽपि प्रामाण्यमसिद्धं तस्यापि२ (२ मु. तस्य ।) क्वचिद्विसंवाददर्शनत्वं प्रति ततोऽविशेषात् । यदविसंवादि चक्षुस्तत्प्रमाणमिति चेन्न, सर्वेषामपि चक्षुषां सर्वत्र सर्वदा अविसंवादस्यानुपलम्भात् । यत्र यदाविसंवादः३ (३ तत्त्वप्रतिपादनमविसंवादः अ. श. ७५.) समुपलभ्यते चक्षुषस्तत्र तदा तस्य प्रामाण्यमिति चेद्यदि क्वचित्कदाचिदविसंवादिनश्चक्षुषोऽपि प्रामाण्यमिष्यते दृष्टादृष्टविषये सर्वत्र

इस सूत्रमें फिरसे केवली पदका ग्रहण किया ।

शंका -- इस सूत्रमें केवली इस वचनके ग्रहण करनेमात्रसे अयोगी-जिनके केवलज्ञानका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ।

समाधान -- यदि यह पूछते हो तो हम भी पूछते हैं कि चक्षुसे स्तम्भ आदिके अस्तित्वका ज्ञान कैसे होता है? यदि कहा जाय, कि चक्षुज्ञानमें अन्यथा प्रमाणता नहीं आ सकती, इसलिये चक्षुद्वारा गृहीत स्तम्भादिकका अस्तित्व है, ऐसा मान लेते हैं । तो हम भी कह सकते हैं कि अन्यथा वचनमें प्रमाणता नहीं आ सकती है, इसलिये वचनके रहने पर उसका वाच्य भी विद्यमान है, ऐसा भी क्यों नहीं मान लेते हो, क्योंकि, दोनों बातें समान हैं ।

शंका -- वचनकी प्रमाणता असिद्ध है, क्योंकि, कहीं पर वचनमें भी विसंवाद देखा जाता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, इस पर तो हम भी ऐसा कह सकते हैं, कि चक्षुकी प्रमाणता असिद्ध है, क्योंकि, वचनके समान चक्षुमें भी कहीं पर विसंवाद प्रतीत होता है ।

शंका -- जो चक्षु अविसंवादी होता है उसे ही हम प्रमाण मानते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, सभी चक्षुओंका सर्व-देश और सर्व-कालमें अविसंवादीपना नहीं पाया जाता है ।

शंका -- जिस देश और जिस कालमें चक्षुके अविसंवाद उपलब्ध होता है, उस देश और उस कालमें उस चक्षुमें प्रमाणता रहती है?

समाधान -- यदि किसी देश और किसी कालमें अविसंवादी चक्षुके प्रमाणता मानते हो तो प्रत्यक्ष और परोक्ष विषयमें सर्व-देश और सर्व-कालमें अविसंवादी ऐसे विवक्षित वचनको प्रमाण क्यों नहीं मानते हो ।

सर्वदाविसंवादिनो वचनस्य प्रामाण्यं किमिति नेष्यते? अदृष्टविषये क्वचिद्विसंवादोपलम्भान्न तस्य सर्वत्र सर्वदा प्रामाण्यमिति चेन्न, तत्र वचनस्यापराधाभावात्तत्स्वरूपानवगन्तुः पुरुषस्य तत्रापराधोपलम्भात्। न ह्यन्यदोषैरन्यः परिगृह्यते, अव्यवस्थापत्तेः। वक्तुरेव तत्रापराधो न वचनस्येति कथमवगम्यत इति चेन्न, तस्यान्यस्य वा तत एव प्रवृत्तस्य पश्चादर्थप्राप्त्युपलम्भात्। अप्रतिपन्नविसंवादाविसंवादस्यास्य वचनस्य प्रामाण्यं कथमवसीयत इति चेन्नैश दोषः, आर्षावयवेन प्रतिपन्नाविसंवादेन सहास्यार्षा-१ (१ मु. सहास्यार्षावयवस्था- 1) वयवस्यावयवविद्वारेणापन्नैकत्वतस्तत्सत्यत्वावगतेः। इक्षुदण्डवन्नानारसः किन्न

-----

शंका -- परोक्ष-विषयमें कहींपर विसंवाद पाया जाता है, इसलिये सर्व-देश और सर्व-कालमें वचनमें प्रमाणता नहीं आ सकती है?

समाधान -- यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उसमें वचनका अपराध नहीं है, किंतु परोक्ष-विषयके स्वरूपको नहीं समझनेवाले पुरुषका ही उसमें अपराध पाया जाता है। कुछ दूसरेके दोषसे दूसरा तो पकड़ा नहीं जा सकता है, अन्यथा अव्यवस्था प्राप्त हो जायेगी।

शंका -- परोक्ष-विषयमें जो विसंवाद उत्पन्न होता है, इसमें वक्ताका ही दोष है वचनका नहीं, यह कैसे जाना?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, उसी वचनसे पुनः अर्थके निर्णयमें प्रवृत्ति करनेवाले उसी अथवा किसी दूसरे पुरुषके दूसरी बार अर्थकी प्राप्ति बराबर देखी जाती है। इससे ज्ञात होता है कि जहां पर तत्त्व-निर्णयमें विसंवाद उत्पन्न होता है वहां पर वक्ताका ही दोष है, वचनका नहीं।

शंका -- जिस वचनकी विसंवादिता या अविसंवादिताका निर्णय नहीं हुआ उसकी प्रमाणताका निश्चय कैसे किया जाय?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं हैं, क्योंकि, जिसकी अविसंवादिताका निश्चय हो गया है ऐसे इस आर्षके अवयवरूप वचनके साथ विवक्षित आर्षके अवयवरूप वचनके भी अवयवीकी अपेक्षा एकपना बन जाता है, इसलिये विवक्षित अवयवरूप वचनकी सत्यताका ज्ञान हो जाता है।

विशेषार्थ -- जितने भी आर्ष-वचन हैं वे सब आर्षके अवयव है, इसलिये आर्षमें प्रमाणता होनेसे उसके अवयवरूप सभी वचनोंमें प्रमाणता आ जाती है।

शंका -- जिस प्रकार गन्ना नाना रसवाला होता है, उसके ऊपरके भागमें भिन्न प्रकारका रस पाया जाता हैं, मध्यके भागमें भिन्न प्रकारका और नीचेके भागमें भिन्न प्रकारका रस पाया जाता है, उसी प्रकार अवयवरूप आर्ष-वचनको भी अनेक प्रकारका मान

-----  
स्यादिति चेन्न, वाच्यवाचकभेदेन तस्य नानात्वाभ्युपगमात् । तद्वत्सत्यासत्यकृतभेदोऽपि तस्यास्त्विति चेन्न, अवयविव्दारेणैकस्य प्रवाहरूपेणापौरुषेयस्यागमस्यासत्यत्वविरोधात् । अथवा न तावदयं वेदः स्वस्यार्थ स्वयमावष्टे, सर्वेषामपि तदवगमप्रसङ्गात् १ (१ अकृत्रिमाम्नायो न स्वयं स्वार्थं प्रकाशयितुमीशस्तदर्थविप्रतिपत्त्यभावानुषंगदिति तद्व्याख्यातानुमन्तव्यः । स च यदि सर्वज्ञो वीतरागश्च स्यात्तदाम्नायस्य तत्परतंत्रतया प्रवृत्तेः किमकृत्रिमत्वकारणं पोष्यते । तद्व्याख्यातुरसर्वज्ञत्वे रागित्वे वाश्रीयमाणे तन्मूलस्य सूत्रस्य नैव प्रमाणता युक्ता तस्य विप्रलंभनात् । त. श्लो. वा. पृ. ७.) । न चैवं २ (२ मु. प्रसङ्गात् । अस्तु चेन्न चैवं १), तथानुपलम्भात् ।

अथान्ये व्याचक्षते, तेषां तदर्थविषयपरिज्ञानमस्ति वा नेति विकल्पव्यावतारः? न द्वितीयविकल्पः, तदर्थवगमरहितस्य व्याख्यातृत्वविरोधात् । अविरोधे वा सर्वः सर्वस्य व्याख्यातास्तु, अज्ञत्वं प्रत्यविशेषात् । प्रथमविकल्पेऽसौ सर्वज्ञो वा स्यादसर्वज्ञो वा ३ (३ स पुरुषोऽसर्वज्ञो रागादिमांश्च यदि तदा तद्व्याख्यानादर्थनिश्चयानुपपत्तिरयथार्थाभिधानशंकनात् । सर्वज्ञो वीतरागश्च न सोऽत्रेदानीमिष्टो यतस्तदर्थनिश्चयः स्यादिति । त. श्लो. वा. पृ. ८.) ? न द्वितीयविकल्पः, ज्ञानविज्ञानविरहादप्राप्तप्रामाण्यस्य व्याख्यातुर्वचनस्य

-----  
लेना चाहिये ।

समाधान -- नहीं, क्योंकि, वाच्य-वाचकके भेदसे उसमें नानापना माना ही गया है ।

शंका -- जिस प्रकार वाच्य-वाचकके भेदसे आर्ष-वचनोंमें भेद माना जाता है, उसी प्रकार वचनोंमें सत्य-असत्यकृत भी भेद मान लेना चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अवयवीरूपसे प्रवाह-क्रमसे आये हुए अपौरुषेय एक आगममें असत्यपना स्वीकार करनेमें विरोध आता है ।

अथवा, यह वेद (आगम) अपने वाच्यभूत अर्थको स्वयं नहीं कहता है। यदि वह स्वयं कहने लगे तो सभीको उसका ज्ञान हो जानेका प्रसंग आ जायगा, इसलिये भी वक्ताके दोषसे वचनमें दोष मानना चाहिये। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, इस प्रकारकी उपलब्धि नहीं होती है।

कोई लोग ऐसा व्याख्यान करते हैं कि वक्ताओंको वेदके वाच्यभूत विषयका परिज्ञान है या नहीं? इस तरह दो विकल्प उत्पन्न होते हैं। इनमेंसे दूसरा विकल्प तो बन नहीं सकता है, क्योंकि जो वेदके अर्थ-ज्ञानसे रहित है, उसको वेदका व्याख्याता माननेमें विरोध आता है। यदि कहो कि इसमें कोई विरोध नहीं है, तो सबको संपूर्ण शास्त्रोंका व्याख्याता हो जाना चाहिये, क्योंकि, अज्ञापना सभीके बराबर है। यदि प्रथम विकल्प लेते हो कि वक्ताको वेदके अर्थका ज्ञान है तो वह वक्ता सर्वज्ञ है कि असर्वज्ञ? इनमेंसे दूसरा विकल्प तो माना नहीं जा सकता, क्योंकि, ज्ञान-विज्ञानसे रहित होनेके कारण जिसने स्वयं प्रमाणताको प्राप्त नहीं किया ऐसे व्याख्याताके वचन प्रमाणरूप नहीं हो सकते हैं।

-----  
प्रामाण्याभावत्। भवतु तस्य तद्वचनस्य चाप्रामाण्यम्, नागमस्य, पुरुषव्यापारनिरपेक्षत्वादिति चेन्न, व्याख्यातारमन्तरेण स्वार्थाप्रतिपादकस्य तस्य व्याख्यात्रधीनवाच्यवाचकभावस्य पुरुषव्यापारनिरपेक्षत्वविरोधात्। तस्मादागमः पुरुषेच्छातोऽर्थप्रतिपादक इति प्रतिपत्तव्यम्। तथा च 'वक्तृप्रामाण्याव्दचनप्रामाण्यम्' इति न्यायादप्रमाणपुरुषव्याख्यातार्थ आगमोऽप्रमाणतां कथं नास्कन्देत्? तस्माद् विगतदोषावरणत्वात्१ (१ मु. विगताशेषदोषा-) प्राप्ताशेषवस्तुविषयबोधस्तस्य व्याख्यातेति प्रतिपत्तव्यम्, अन्यथास्यापौरुषेयस्यापि२ (२ मु. पौरुषेयत्वस्यापि।) पौरुषेयवदप्रामाण्यप्रसङ्गात्। असर्वज्ञानां व्याख्यातृत्वाभावे आर्षसन्ततेर्विच्छेदः, स्यात् अर्थशून्याया३ (मु. विच्छेदस्यार्थशून्याया।) वचनपध्दतेरार्षत्वाभावादिति चेन्न, इष्टत्वात्। नाप्यार्षसन्ततेर्विच्छेदः, विगतदोषावरणार्हद्व्याख्यातार्थस्यार्षस्य चतुरमलबुद्ध्यतिशयोपेतनिर्दोषगणभृदवधारितस्य ज्ञानविज्ञानसम्पन्नगुरुपर्वक्रमेणायातस्याविनष्ट -

-----  
शंका -- असर्वज्ञ वक्ता और उसके वचनको अप्रमाणता भले ही मान ली जाय, परन्तु आगममें अप्रमाणता नहीं मानी जा सकती, क्योंकि, आगम पुरुषके व्यापारकी अपेक्षासे रहित है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, व्याख्याताके विना वेद स्वयं अपने विषयका प्रतिपादक नहीं है, इसलिये उसका वाच्य-वाचकभाव व्याख्याताके आधीन है। अतएव वेदमें पुरुष व्यापारकी निरपेक्षता नहीं बन सकती

है। इसलिये आगम पुरुषकी इच्छासे अर्थका प्रतिपादक है, ऐसा समझना चाहिये। ऐसी अवस्थामें 'वक्ताकी प्रमाणतासे वचनमें प्रमाणता आती है' इस न्यायके अनुसार अप्रमाणभूत पुरुषके द्वारा व्याख्यान किया गया आगम अप्रमाणताको कैसे प्राप्त नहीं होगा, अर्थात्, अवश्य प्राप्त होगा? इसलिये जिसने, संपूर्ण दोष और आवरणोंको दूर कर देनेसे संपूर्ण वस्तु-विषयक ज्ञानको प्राप्त कर लिया है, वही आगमका व्याख्याता हो सकता है, ऐसा समझना चाहिये। अन्यथा इस अपौरुषेय आगमको भी पौरुषेय आगमके समान अप्रमाणताका प्रसंग आ जाएगा।

शंका -- असर्वज्ञोंको व्याख्याता नहीं मानने पर आर्षसन्ततिका विच्छेद हो जायगा, क्योंकि, अर्थशून्य वचन पद्धतिमें आर्षपना नहीं बन सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, वैसा तो हम मानते ही है। अर्थात् अर्थशून्य वचन-रचनाको हमारे यहां आगमरूपसे प्रमाण नहीं माना है।

दूसरे हमारे यहां आर्ष-परंपराका विच्छेद भी नहीं है, क्योंकि, जिसका दोष और आवरणसे रहित अरहंत परमेष्ठीने अर्थरूपसे व्याख्यान किया है, जिसको चार निर्मल बुद्धिरूप अतिशयसे युक्त और निर्दोष गणधरदेवने धारण किया है, जो ज्ञान-विज्ञान संपन्न गुरुपरंपरासे चला आ रहा है, जिसका पहलेका वाच्य-वाचकभाव अभीतक नष्ट नहीं हुआ है और जो दोषावरणसे रहित तथा निष्प्रतिपक्ष सत्य-स्वभाववाले पुरुषके द्वारा व्याख्यात होनेसे श्रद्धाके

प्राक्तनवाच्यवाचकभावस्य

विगतदोषावरणनिष्प्रतिपक्षसत्यस्वभावपुरुषव्याख्यातत्वेन

श्रद्धाप्यमानस्योपलम्भात्। अप्रमाणमिदानीन्तन आगमः, आरातीयपुरुषव्याख्यातार्थत्वादिति चेन्न,

ऐदंयुगीनज्ञानविज्ञानसम्पन्नतया प्राप्तप्रामाण्यैराचार्यैर्व्याख्यातार्थत्वात्। कथं छद्मस्थानां सत्यवादित्वमिति चेन्न, यथाश्रुतव्याख्यातृणां तदविरोधात्। प्रमाणीभूतगुरुपर्वक्रमेणायातोऽयमर्थ इति कथमवसीयत इति चेन्न, दृष्टविषये सर्वत्राविसंवादात्, अदृष्टविषयेऽप्यविसंवादिनागमभागेनैकत्वे१ (१ मु. भावेनैकत्वे।) सति सुनिश्चितासम्भववद्बाधकप्रमाणतत्वात्२ (२ यथा वाधुनात्र चास्मदादीनां प्रत्यक्षादिति न तद्बाधकं तथान्यत्रान्यदान्येषां च विशेषाभावादिति सिद्धं सुनिश्चितासंभवद्बाधकत्वमस्य तथ्यतां साधयति। त. श्लो.

वा. पृ. ७.), ऐदंयुगीनज्ञानविज्ञानसम्पन्नभूयसामाचार्याणामुपदेशाब्दा

योग्य है ऐसे आगमकी आज भी उपलब्धि होती है।

शंका -- आधुनिक आगम अप्रमाण है, क्योंकि, अर्वाचीन पुरुषोंने इसकेअर्थका व्याख्यान किया है?

समाधान -- यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, ज्ञान-विज्ञानसे सहित होनेके कारण प्रमाणताको प्राप्त इस युगके आचार्योंके द्वारा इसकेअर्थका व्याख्यान किया गया है, इसलिये आधुनिक आगम भी प्रमाण है।

शंका -- छद्मोस्थोंकेसत्यवादीपना कैसे माना जा सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, श्रुतके अनुसार व्याख्यान करनेवाले आचार्योंके प्रमाणता माननेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका -- आगमका यह अर्थ प्रामाणिक गुरुपरंपराके क्रमसे आया हुआ है, यह कैसे निश्चय किया जाय?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, प्रत्यक्षभूत विषयमें तो सब जगह विसंवाद उत्पन्न नहीं होनेसे निश्चय किया जा सकता है। और परोक्ष विषयमें भी, जिसमें परोक्ष-विषयका वर्णन किया गया है वह भाग अविस्वादी आगमके दूसरे भागोंके साथ आगमकी अपेक्षा एकताको प्राप्त होने पर, अनुमानादि प्रमाणोंके द्वारा बाधक प्रमाणोंका अभाव सुनिश्चित होनेसे उसका निश्चय किया जा सकता है अथवा, ज्ञान विज्ञानसे युक्त इस युगके अनेक आचार्योंके उपदेशसे उसकी प्रमाणता जानना चाहिये। और बहुतसे साधु इस विषयमे विसंवाद नहीं करते हैं, क्योंकि, इस तरहका विसंवाद कहीं पर भी नहीं पाया जाता है। अतएव आगमके अर्थके व्याख्याता प्रामाणिक पुरुष हैं इस बातके निश्चित हो जानेसे आर्ष-वचनकी प्रमाणता भी सिद्ध हो जाती है। और आर्ष-वचनकी प्रमाणताके सिद्ध हो जानेसे मनके अभावमें भी केवलज्ञान

तदवगतेः। न च भूयांसः साधवो विसंवदन्ते, तथान्यत्रानुपलम्भात्। प्रमाणपुरुषव्याख्यातार्थत्वात् स्थितं वचनस्य प्रामाण्यम्। ततो मनसोऽभावेऽप्यस्ति केवलज्ञानमिति सिद्धम्। अथवा न केवलज्ञानं मनसः समुत्पद्यमानमुपलब्धं श्रुतं वा, येनैषारेकोत्पद्येत। क्षायोपशमिको हि बोधः क्वचिन्मनस उत्पद्यते। मनसोऽभावाद्भवतु तस्यैवाभावः, न केवलस्य, तस्मात्तस्यात्पत्तेरभावात्। सयोगस्य केवलिनः केवलं मनसः समुत्पद्यमानमुपलभ्यत१ (१ मु. समुपलभ्यत.) इति चेन्न, स्वावरणक्षयादुत्पन्नस्याक्रमस्य पुनरुत्पत्तिविरोधात्।

ज्ञानत्वान्मत्यादिज्ञानवत्कारकमपेक्षते केवलमिति चेन्न, क्षायिकक्षायोपशमिकयोः साधर्म्याभावात् । प्रतिक्षणं विवर्तमानानर्थानपरिणामि केवलं कथं परिच्छिनत्तीति चेन्न, ज्ञेयसमपरिवर्तिनः२ (२ मु. विपरिवर्तिनः १) केवलस्य तदविरोधात् ।

होता हैं यह बात भी सिद्ध हो जाती है ।

अथवा, केवलज्ञान मनसे उत्पन्न होता हुआ न तो किसीने उपलब्ध किया और न किसीने सुना ही, जिससे कि यह शंका उत्पन्न हो सके । क्षायोपशमिक ज्ञान अवश्य ही कहीं पर (संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें) मनसे उत्पन्न होता है । इसिलिये अयोगकेवलीके मनका अभाव होनेसे क्षायोपशमिक ज्ञानका ही अभाव सिद्ध होगा, न कि केवलज्ञानका, क्योंकि, अयोगकेवलियोंको मनसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती है ।

शंका -- सयोगकेवलीके तो केवलज्ञान मनसे उत्पन्न होता हुआ उपलब्ध होता है?

समाधान -- यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, जो ज्ञान ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे उत्पन्न है और जो अक्रमवर्ती है, उसकी पुनः उत्पत्ति मानना विरुद्ध है ।

शंका -- जिस प्रकार मति आदि ज्ञान, स्वयं ज्ञान होनेसे अपनी उत्पत्तिमें कारककी अपेक्षा करते हैं, उसी प्रकार केवलज्ञान भी ज्ञान है, अतएव उसे भी अपनी उत्पत्तिमें कारककी अपेक्षा करनी चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, क्षायिक और क्षायोपशमिक ज्ञानमें साधर्म्य नहीं पाया जाता है ।

शंका -- अपरिवर्तनशील केवलज्ञान प्रत्येक समयमें परिवर्तनशील पदार्थोंको कैसे जानता है?

समाधान -- ऐसी शंका ठीक नहीं है, क्योंकि, ज्ञेय पदार्थोंके समान परिवर्तन करनेवाले केवलज्ञानके उन पदार्थोंके जाननेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका -- ज्ञेयकी परतन्त्रतासे परिवर्तन करनेवाले केवलज्ञानकी फिरसे उत्पत्ति क्यों नहीं मानी जाय?

समाधान -- नहीं क्योंकि, केवल उपयोग-सामान्यकी अपेक्षा केवलज्ञानकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती है । विशेषकी अपेक्षा उसकी उत्पत्ति होते हुए भी वह (उपयोग) इन्द्रिय,

ज्ञेयपरतन्त्रतया विपरिवर्तमानस्य केवलस्य कथं पुनर्नोत्पत्तिरिति१ (१ मु. पुनर्नोत्पत्तिरिति १) चेन्न, केवलोपयोगसामान्यापेक्षया तस्योत्पत्तेरभावात् । विशेषापेक्षया च नेन्द्रियालोकमनोभ्यस्तदुत्पत्तिर्विगतावरणस्य तद्विरोधात् । केवलमसहायत्वान्न तत्सहायमपेक्षते, स्वरूपहानिप्रसङ्गात्२ (२ विशेषजिज्ञासुभिः अष्टसहस्री

पृ. २३६-२३७. तथा प्रमेयकमलमार्तण्डः पृ. ११२-११६. द्रष्टव्यः ।) । प्रमेयमपि मैक्षिष्ट, असहायत्वादिति३ (३ मु. मैवमैक्षिष्टासहायत्वादिति ।) चेन्न, तस्य तत्त्वभावत्वात् । न हि स्वभावाः परपर्यनुयोगार्हाः, अव्यवस्थापत्तेरिति । पञ्चसु गुणेषु कोऽत्र गुण इति चेत् क्षीणाशेषघातिकर्मत्वान्निरस्यमाना-घातिकर्मत्वाच्च क्षायिको गुणः । उक्तं च ---

सेलेसिं४ (४ शिलाभिर्निर्वृत्तः शिलानां वाऽयमिति शैलस्तेषामीशः शैलेशो मेरुः शैलेशस्येयं, स्थिरतासाम्यात् परमशुक्लध्याने वर्तमानः शैलेशीमानभिधीयते, अभेदोपचारात् स एव शैलेशी, मेरुरिवाप्रकम्पो यस्यामवस्थायां सा शैलेश्यवस्था । अथवा पूर्वमस्थिरतयाऽशैलेशो भूत्वा पश्चात्स्थिरतयैव यस्यामवस्थायां शैलेशानुकारी भवति स सा । अथवा सेलेसी होई X X सोऽतिथिरताए सेलोव्व इसीति स ऋषिः स्थिरतया शैल इव भवति । अथवा सेलेसो भण्णइ सेलेसी होइ मागधदेशीभाषाय से-सो अलेसीभवति तस्यामवस्थायां, अकारलोपत् । अथवा सेलसो निश्चयतः शीलं समाधानं, स च सर्वसंवरस्तस्येशः, तस्य शीलेशस्य याऽवस्थां सा शैलेशी अवस्थोच्यते । वि. भा. को. वृ. पृ. ८६६.)

संपतो णिरुद्ध-णिस्सेस-आसवो जीवो ।

कम्म-रय-विप्पमुक्को गय-जोगो केव्वली होई५ (५ प्रा. पं. १, ३० । गो. जी. ६५. तत्र 'सीलेसिं' इति पाठः । शीलानां अष्टादशसहस्रसंख्यानां ऐश्यं ईश्वरत्वं स्वामित्वं संप्राप्तः । मं. प्र. टी. )  
॥१२६॥

मन और आलोकसे उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि, जिसके ज्ञानावरणादि कर्म नष्ट हो गये हैं ऐसे केवलज्ञानकी इन्द्रियादिकसे उत्पत्ति होनेमें विरोध आता है ।

दूसरी बात यह है कि केवलज्ञान असहाय है, इसलिये वह इन्द्रियादिकोंकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करता है, अन्यथा स्वरूपकी हानिका प्रसंग आ जायगा ।

शंका -- यदि केवलज्ञान असहाय है तो वह प्रमेयको भी मत जाने?

समाधान -- ऐसा नहीं है, क्योंकि, पदार्थोंको जानना उसका स्वभाव है । और वस्तुके स्वभाव दूसरोंके प्रश्नोंके योग्य नहीं हुआ करते हैं । यदि स्वभावमें भी प्रश्न होने लगे तो फिर वस्तुओंकी व्यवस्था ही नहीं बन सकेगी ।

शंका -- पांच प्रकारके भावोंमेंसे इस गुणस्थानमें कौनसा भाव है?

समाधान --- संपूर्ण घातिया कर्मोंके क्षीण हो जानेसे और थोड़े ही समयमें अघातिया कर्मोंके नाशको प्राप्त होनेवाले होनेसे इस गुणस्थानमें क्षायिक भाव है। कहा भी है ---

जिन्होंने अठारह हजार शीलके स्वामीपनेको प्राप्त कर लिया है, अथवा जो मेरुके समान निष्कम्प अवस्थाको प्राप्त हो चुके हैं, जिन्होंने संपूर्ण आस्त्रवका निरोध कर दिया है, जो नूतन बँधनेवाले कर्म-रजसे रहित हैं, और जो मन, वचन तथा काय योगसे रहित होते हुए केवलज्ञानसे विभूषित हैं उन्हें अयोगकेवली परमात्मा कहते हैं ॥१२६॥

-----

मोक्षस्य सोपानीभूतानि चतुर्दश गुणस्थानानि प्रतिपाद्य संसारातीतगुणप्रतिपादनार्थमाह ---

सिध्दा चेदि ॥२३॥

सिध्दाः निष्ठिताः निष्पन्नाः कृतकृत्याः सिध्दसाध्या इति यावत्। निराकृताशेषकर्माणो बाह्यार्थनिरपेक्षानन्तानुपमसहजाप्रतिपक्षसुखाः निरुपलेपाः अविचलितस्वरूपाः सकलावगुणातीताः निःशेषगुणनिधानाः चरमदेहात्किञ्चिन्न्यून-स्वदेहाः कोशविनिर्गतसायकोपमाः लोकशिखरनिवासिनः सिध्दाः। उक्तं च ---

अद्भुविह-कम्म-विजडा१ (१ मु. विजुदा।) सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।

अद्भु-गुणा किदकिच्चा लोयग्ग-णिवासिणो सिध्दार (२ प्रा. पं. १, ३१। गो. जी. ६८ 'अद्भुविहकम्मविजुदा' अनेन संसारिजीवस्य मुक्तिर्नास्तीति याज्ञिकमतं, सर्वदा कर्ममलैरस्पृष्टत्वेन सदा मुक्त एव सदैवेश्वर इति सदाशिवमतं च अपास्तं। 'सीदीभूदा' अनेन मुक्तौ आत्मनः सुखाभावं वदन् सांख्यमतमपाकृतं। 'णिरंजना' अनेन मुक्तात्मनः पुनःकर्माजनसंसर्गेण संसारोऽस्तीति वदन् मस्करीदर्शनं प्रत्याख्यातं। 'णिच्चा' अनेन प्रतिक्षणं विनश्वरचित्पर्याया एव एकसंतानवर्तिनः परमार्थतो नित्यद्रव्यं नेति वदंतीति बौध्दप्रत्यवस्था प्रतिव्यूढा। 'अद्भुगुणा' अनेनज्ञानादिगुणानामत्यन्तोच्छित्तिरात्मनो मुक्तिरिति वदनैयाधिकवैशेषिकाभिप्रायः प्रत्युक्तः। 'किदकिच्चा' अनेन ईश्वरः सदा मुक्तोऽपि जगन्निर्माणे कृतादरत्वेनाकृतकृत्य इति वददीश्वरसृष्टिवादाकृतम् निराकृतम्। 'लोयग्गणिवासिणो' अनेन आत्मनः ऊर्ध्वगमनस्वाभाव्यात् मुक्तावस्थायां क्वचिदपि विश्रामाभावात् उपर्युपरि गमनमिति वदन् मांडलिकमतं प्रत्यस्तं। जी. प्र. टी.) ॥१२७॥

-----  
मोक्षके सोपानीभूत चौदह गुणस्थानोंका प्रतिपादन करके अब संसारसे अतीत गुणके प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

सामान्यसे सिद्ध जीव हैं ॥२३॥

सिद्ध, निष्ठित, निष्पन्न, कृतकृत्य और सिद्धसाध्य ये एकार्थवाची नाम हैं। जिन्होंने समस्त कर्मोंका निराकरण कर दिया है, जिन्होंने बाह्य पदार्थोंकी अपेक्षा रहित, अनन्त, अनुपम, स्वाभाविक और प्रतिपक्षरहित सुखको प्राप्त कर लिया है, जो निर्लेप हैं, अचल स्वरूपको प्राप्त हैं, संपूर्ण अवगुणोंसे रहित हैं, सर्व गुणोंकेनिधान हैं, जिनका स्वदेह अर्थात् आत्माका आकार चरम शरीरसे कुछ न्यून है, जो कोशसे निकले हुए बाणकेसमान विनिःसंग हैं और लोककेअग्रभागमें निवास करते हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं। कहा भी है ---

जो ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंसे सर्वथा मुक्त हैं, सब प्रकार दुःखोंसे मुक्त होनेसे शांतिसुखमय है। निरंजन हैं, नित्य हैं, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व और अगुरुलघु इन आठ गुणोंसे युक्त है, कृतकृत्य हैं और लोककेअग्रभागमें निवास करते हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं ॥१२७॥

‘अत्थि मिच्छाइट्ठ’ इस सूत्रसे लेकर ‘सिद्धा चेदि’ इस सूत्र पर्यन्त सब जगह अस्ति’ पदका संबन्ध कर लेना चाहिये। ‘सिद्धा चेदि’ इस सूत्रमें आया हुआ ‘च’ शब्द

-----  
सव्वत्थ अत्थि त्ति संबंधो कायव्वो। ‘च’ सद्दो समुच्चयद्दो। ‘इदि’ सद्दो एत्तियाणि चव गुणद्वाणाणि त्ति गुणद्वाणाणं समत्ति-वाचओ।

चोद्दसण्हं गुणद्वाणाणं ओघ-परुवणं कारुण आदेस-परुवणट्ठं सुत्तमाह ---

आदेसेण गदियाणुवादेण अत्थि णिरयगदी तिरिक्खगदी मणुस्सगदी देवगदी सिद्धिगदी<sup>१</sup> (१ मु. सिद्धगदी।) चेदि ॥२४॥

आदेशग्रहणं सामर्थ्यलभ्यमिति न वाच्यमिति चेन्न स्पष्टिकरणार्थत्वात्। गतिरुक्तलक्षणा, तस्याः वदनं वादः। प्रसिद्धस्याचार्यपरम्परागतस्यार्थस्य अनु पश्चाद् वादोऽनुवादः। गतेरनुवादो गत्यनुवादः तेन गत्यनुवादेन।२ (२ अग्रेतनसन्दर्भेण गो. जीवकाण्डस्य गा. १४७ तमस्य जी. प्र. टीका प्रायेण समाना।)

हिंसादिष्वसदनुष्ठानेषु व्यापृताः निरतास्तेषां गतिर्निरतगतिः । अथवा नरान् प्राणिनः कायति यातयति३ (३ मु. पातयति ।) खलीकरोति इति नरकः कर्म, तस्य नरकस्यापत्यं४ (४ मु. नरकस्यापत्यानि ।) नारकास्तेषां गतिर्नारकगतिः ।

समुच्चयरूप अर्थका वाचक है और 'इति' शब्द, गुणस्थान इतने ही होते हैं इससे कम या अधिक नहीं, इस प्रकार गुणस्थानोंकी समाप्तिका वाचक है ।

चौदह गुणस्थानोंका सामान्य प्ररूपण करके अब विशेष प्ररूपणकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

आदेश-प्ररूपणाकी अपेक्षा गत्यनुवादसे नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति, देवगति और सिद्धिगति है ॥२४॥

शंका -- आदेश पदका ग्रहण सामर्थ्य-लभ्य है, इसलिये इस सूत्रमें उसको ग्रहण नहीं करना चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, स्पष्टीकरण करनेकेलिये आदेश पदका सूत्रमें ग्रहण किया है ।

गतिका लक्षण पहले कह आये हैं । उसके कथन करनेको वाद कहते हैं । आचार्य-परंपरासे आये हुए प्रसिद्ध अर्थका तदनुसार कथन करना अनुवाद है । इस तरह गतिका आचार्यपरंपराके अनुसार कथन करना गत्यनुवाद है, उससे अर्थात् गत्यनुवादसे नरकगति आदि गतियां होती हैं । जो हिंसादिक असमीचीन कार्योंमें व्यापृत हैं उन्हें निरत कहते हैं, और उनकी गतिको निरतगति कहते हैं । अथवा, जो नर अर्थात् प्राणियोंको काता है अर्थात् यातना देता है, पीसता है उसे नरक कहते हैं । नरक वह एक कर्म है । इससे जिनकी उत्पत्ति होती है उनको नरक कहते हैं, और उनकी गतिको नारकगति कहते हैं । अथवा, जिस गतिका उदय संपूर्ण अशुभ कर्मोंके उदयका सहकारी-कारण हैं उसे नरकगति कहते हैं । अथवा, जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें तथा परस्परमें रत नहीं हैं, अर्थात्, प्रीति नहीं रखते

अथवा यस्या उदयः सकलाशुभकर्मणामुदयस्य सहकारिकारणं भवति सा नरकगतिः । अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभावेष्वन्योन्येषु१ (१ नरकगतिसम्बन्धयन्नपानादिद्रव्ये तद्भूतलरूपक्षेत्रे समयादिस्वायुरवसानकाले चित्पर्यायरूपभावे । गो. जी., जी. प्र., टी. १४७) च विरताः नरताः, तेषां

गतिर्नरतगतिः२ (२ अथवा निर्गतोभ्यः पुण्यं एभ्यस्ते निरयाः तेषां गतिः निरयगतिः । गो. जी., जी. प्र., टी. १४७.) उक्तं च ---

ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्ते य काल-भावे य ।

अण्णोण्णेहि य जम्हा तम्हा ते णारया भणिया३ (३ प्रा. पं. १,६०, गो. जी. १४७.) ॥१२८॥

सकलतिर्यक्पर्यायोत्पत्तिनिमित्ता

तिर्यग्गतिः ।

अथवा

तिर्यग्गतिकर्मोदयापादिततिर्यक्पर्यायकलापस्तिर्यग्गतिः । अथवा तिरो वक्रं कुटिलमित्यर्थः, तदञ्चन्ति त्रजन्तीति तिर्यञ्चः । तिरश्चां गतिः तिर्यग्गतिः उक्तं च---

तिरयंति कुडिल-भावं सुवियड-सण्णा णिगिड्ढमण्णाणा ।

अच्चंत-पाव-बहुला तम्हा तेरिच्छया णाम४ (४ प्रा. पं. १,६१ गो. जी. १४८. यस्मात्कारणात् ये जीवाः सुविवृतसंज्ञाः अगूढाहारादिप्रकटसंज्ञायुताः, प्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धयादिभिरल्पीयस्त्वान्निकृष्टाः हेयोपादेयज्ञानादिभिर्विहीनत्वादज्ञानाः, नित्यनिगोदविवक्षया अत्यन्तपापबहुलाः तस्मात् कारणात्ते जीवाः तिरोभावं कुटिलभावं मायापरिणामं अंचंति गच्छंति इति तिर्यंचो भणिता भवन्ति । जी. प्र., टी.) ॥ १२९ ॥

अशेषमनुष्यपर्यायनिष्पादिका मनुष्यगतिः । अथवा मनुष्यगतिकर्मोदयापादित-मनुष्यपर्यायकलापः कार्ये कारणोपचारात्मनुष्यगतिः । अथवा मनसा निपुणाः मनसा

हैं उन्हें नरत कहते हैं, और उनकी गतिको नरतगति कहते हैं । कहा भी है ---

यतः जिस कारणसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें जो स्वयं तथा परस्परमें कभी भी रमते नहीं, इसलिये उनको नारत कहते हैं ॥१२८॥

समस्त जातिके तिर्यंचोंमें उत्पत्तिका जो कारण है उसे तिर्यग्गति कहते हैं । अथवा तिर्यग्गति कर्मके उदयसे प्राप्त हुए तिर्यंच-पर्यायोंके समूहको तिर्यग्गति कहते हैं । अथवा, तिरस् वक्र और कुटिल ये एकार्थवाची नाम हैं, इसलिये यह अर्थ हुआ कि जो कुटिलभावको प्राप्त होते हैं उन्हें तिर्यंच कहते हैं, और उनकी गतिको तिर्यग्गती कहते हैं । कहा भी है---

जो मन, वचन और कायकी कुटिलताको प्राप्त हैं, जिनकी आहारादि संज्ञाएँ सुव्यक्त हैं, जो निकृष्ट अज्ञानी हैं और जिनके अत्यधिक पापकी बहुलता पाई जावे उनको तिर्यंच कहते हैं ॥१२९॥

जो मनुष्यकी संपूर्ण पर्यायोंमें उत्पन्न कराती है उसे मनुष्यगति कहते हैं। अथवा, मनुष्यगति नामकर्मके उदयसे प्राप्त हुए मनुष्य-पर्यायोंके समूहको कार्यमें कारणके उपचारसे मनुष्यगति कहते हैं अथवा, जो मनसे निपुण हैं, या मनसे उत्कट अर्थात् सूक्ष्म-विचार आदि

उत्कटा इति वा मनुष्याः, तेषां गतिः मनुष्यगति। उक्तं च ---

मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा मणुक्कडा जम्हा।

मणु-उब्भवा य सव्वे तम्हा ते माणुसा भणिया१ (१ प्रा. पं. १, ६२। गो. जी.

१४९. द्वितीयो यस्माच्छब्दोऽनर्थकः लब्धपर्याप्तकमनुष्याणां पूर्वोक्तमनुष्यलक्षणाभावेऽपि मनुष्यगतिनामायुःकर्मोदयजनितत्वमात्रेणैव मनुष्यत्वमाचार्यस्येष्टं ज्ञापयति। अनर्थकानि वचनानि किंचिदिष्टं ज्ञापयन्त्याचार्यस्य इति न्यायात्। मं. प्र. टी. १) ॥१३०॥

<sup>२</sup> (२ अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशत्वं वशित्वं चाष्ट सिध्दयः॥) अणिमाद्यष्टगुणावष्टम्भलेन दीव्यन्ति ब्रैडन्तीति देवाः। देवानां गतिर्देवगतिः। अथवा देवगतिनामकर्मोदयोऽणिमादिदेवाभिधानप्रत्ययव्यवहारनिबन्धनपर्यायोत्पादको देवगतिः। देवगतिनामकर्मोदयजनितपर्यायो वा देवगतिः कार्ये कारणोपचारात्। उक्तं च ---

दिव्वंति जदो णिच्चं गुणेहि अडुहि य दिव्व-भावेहि३ (३ मु. दव्व-भावेहि)।

भासंत-दिव्व-काया तम्हा ते वणिया देवा४ (४ प्रा. पं. १, ६३। गो. जी. १५१. तत्र

‘दव्वभावेहि’ इति स्थाने ‘दिव्वभावेहि’ इति पाठः।) ॥ १३१॥

सिध्दिः स्वरूपोपलब्धिः सकलगुणैः स्वरूपनिष्ठा सा एव गतिः सिध्दिगतिः।

सातिशय उपयोगसे युक्त हैं उन्हें मनुष्य कहते हैं, और उनकी गतिको मनुष्यगति कहते हैं। कहा भी है ---

जिसकारण जो सदा हये-उपादेय आदिका विचार करते हैं, अथवा, जो मनसे गुण-दोषादिकका विचार करनेमें निपुण हैं, अथवा, जो मनसे उत्कट अर्थात्, दूरदर्शन, सूक्ष्मविचार, चिरकाल धारण आदि रूप उपयोगसे युक्त हैं, अथवा, जो मनुकी सन्तान हैं, इसलिये उन्हें मनुष्य कहते हैं ॥१३०॥

जो अणिमा आदि आठ ऋद्धियोंकी प्राप्तिके बलसे क्रीडा करते हैं उन्हें देव कहते हैं, और देवोंकी गतिको देवगति कहते हैं। अथवा, जो अणिमादि ऋद्धियोंसे युक्त 'देव' इस प्रकारके शब्द, ज्ञान और व्यवहारमें कारणभूत पर्यायका उत्पादक है ऐसे देवगति नामकर्मके उदयको देवगति कहते हैं। अथवा, देवगति नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई पर्यायको कार्यमें कारणके उपचारसे देवगति कहते हैं। कहा भी है --

क्योंकि वे दिव्यस्वरूप अणिमादि आठ गुणोंके द्वारा निरन्तर क्रीडा कहते हैं, और उनका शरीर प्रकाशमान तथा दिव्य है, इसलिये उन्हें देव कहते हैं ॥१३१॥

आत्म-स्वरूपकी प्राप्ति अर्थात् अपने संपूर्ण गुणोंसे आत्म-स्वरूपमें स्थित होनेको सिद्धि कहते हैं। ऐसी सिद्धिस्वरूप गतिको सिद्धिगति कहते हैं। कहा भी है ---

उक्तं च ---

जाइ-जरा-मरण-भयासंजोय-विओय-दुक्ख-सण्णाओ ।१ (१ कर्मवशाज्जीवस्य भवे भवे स्वशरीरपर्यायोत्पत्तिर्जातिः । जातस्य तथाविधशरीरपर्यायस्य क्योहान्या विशरणं जरा । स्वायुःक्षयात्तथाविधशरीरपर्यायप्राणत्यागो मरणं । अनर्थाशंकया अपकारकेभ्यः पलायनेच्छा भयं । क्लेशकारणानिष्टद्रव्यसंगमः संयोगः । सुखकारणेष्टद्रव्यापायो वियोगः । एतेभ्यः समुत्पन्नानि आत्मनो निग्रहरूपाणि दुःखानि । शेषास्तिस्रः आहारादिवांछारूपाः संज्ञाः । गो. जी., मं. प्र. टी. १५२)

रोगादिया य जिस्से ण संति सा होइर (२ प्रा. पं. १, ६४ । गो. जी. १५२) सिद्धिगई  
३ (३ मु.सिद्धगई ।) ॥१३२॥

सर्वत्रास्तीत्यभिसम्बन्धः कर्तव्यः । प्रतिज्ञावाक्यत्वाध्देतुप्रयोगः कर्तव्यः, प्रतिज्ञामात्रातः साध्यसिद्धयनुपपत्तेरिति चेन्नेदं प्रतिज्ञावाक्यं प्रमाणत्वात्, न हि प्रमाणं प्रमाणान्तरमपेक्षते, अनवस्थापत्तेः । नास्य प्रामाण्यमसिद्धम्, उक्तोत्तरत्वात् ।

साम्प्रतं मार्गणैकदेशगतेरस्तित्वमभिधाय तत्र जीवसमासान्वेषणाय सूत्रमाह ---

णेरइया चदुसु४ (मु. अ. चउद्वाणेसु) द्वाणेसु अत्थि मिच्छाइड्डी सासणसम्माइड्डी सम्मामिच्छाइड्डी असंजदसम्माइट्ठि ति ॥२५॥

जिसमें जन्म, जरा, मरण, भय, संयोग, वियोग, दुःख, आहारादि संज्ञाएँ और रोगादिक नहीं पाये जाते हैं उसे सिद्धिगति कहते हैं ॥१३२॥

सूत्रमें आये हुए अस्ति पदका प्रत्येक गतिके साथ संबन्ध कर लेना चाहिये ।

शंका -- 'नरकगति है, तिर्यचगति है' इत्यादि प्रतिज्ञा वाक्य होनेसे इनके अस्तित्वकी सिद्धिके लिये हेतुका प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि, केवल प्रतिज्ञा-वाक्यसे साध्यकी सिद्धि नहीं हो सकती है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, 'नरकगति है' इत्यादि वचन प्रतिज्ञावाक्य न होकर प्रमाणवाक्य (आगमप्रमाण) हैं । जो स्वयं प्रमाणस्वरूप होते हैं वे दूसरे प्रमाणकी अपेक्षा नहीं करते हैं । यदि स्वयं प्रमाण होते हुए भी दूसरे प्रमाणोंकी अपेक्षा की जावे तो अनवस्थादोष आ जाता है । और इन वचनोंकी स्वयं प्रमाणता भी असिद्ध नहीं हैं, क्योंकि, इस विषयमें पहले ही उत्तर दिया जा चुका है कि यह उपदेश सर्वज्ञके मुख-कमलसे प्रगट होकर आचार्यपरंपरासे चला आ रहा है, इसलिये प्रमाण ही है ।

मार्गणाके एकदेशरूप गतिका सद्भाव बताकर अब उसमें जीवसमासोंके अन्वेषणके लिये सूत्र कहते हैं ---

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानोंमें नारकी होते हैं ॥२५॥

नारकग्रहणं मनुष्यादिनिराकरणार्थम् । चतुर्ग्रहणं पञ्चादिसंख्यापोहनार्थम् । अस्तिग्रहणं प्रतिपत्तिगौरवनिरासार्थम् । नारकाश्चतुर्षु स्थानेषु सन्तीत्यस्मात्सामान्य- वचनात्संशयो मा जनीति तदुत्पत्तिनिराकरणार्थं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणानां नामनिर्देशः । अस्तु मिथ्यादृष्टिगुणे तेषां सत्त्वम् मिथ्यादृष्टिषु तत्रोत्पत्तिनिमित्तमिथ्यात्वस्य सत्त्वात् । नेतरेषु गुणेषु तेषां सत्त्वम्, तत्रोत्पत्तिनिमित्तस्य मिथ्यात्वस्यासत्त्वादिति चेन्न, आयुषो बन्धमन्तरेण मिथ्यात्वाविरतिकषायाणां १ (१ अ.ब.क. मिथ्याविरति.) तत्रोत्पादनसामर्थ्याभावात् । न च बध्दस्यायुषः सम्यक्त्वान्निरन्वयविनाशः, आर्षविरोधात् । न हि बध्दायुषः सम्यक्त्वं संयममिव न प्रतिपद्यन्ते, सूत्रविरोधात् २ (२ चत्वारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं । अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं । गो. क. ३३४.) । सम्यग्दृष्टीनां बध्दायुषां तत्रोत्पत्तिरस्तीति सन्ति तत्रासंयतसम्यग्दृष्टयः, न सासादनगुणवतां तत्रोत्पत्तिः तद्गुणस्य तत्रोत्पत्त्या सह विरोधात् ३ । (३ ण सासणो

णारयापुण्णे: गो. जी. १२८. णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदि ति। गो. क. ६२२.) तर्हि कथं तव्वतां तत्र सत्त्वमिति चेन्न,

-----  
मनुष्यादिके निराकरण करनेके लिये सूत्रमें नारक पदका ग्रहण किया है। पांच आदि संख्याओंके निराकरण करनेके लिये 'चतुर' पदका ग्रहण किया है। जाननेमें कठिनाई न पड़े इसलिये 'अस्ति' पदका ग्रहण किया है। नारकी चार गुणस्थानोंमें होते हैं, इस सामान्य वचनसे संशय न हो जाय कि वे चार गुणस्थान कौन कौनसे हैं, इसलिये चार संशयको दूर करनेके लिये मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंका नाम-निर्देश किया है।

शंका -- मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नारकियोंका सत्त्व रहा आवे, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि उन नारकियोंमें उत्पत्तिका निमित्त कारण मिथ्यादर्शन पाया जाता है। किन्तु दूसरे गुणस्थानोंमें नारकियोंका सत्त्व नहीं पाया जाना चाहिये, क्योंकि, अन्य गुणस्थानसहित नारकियोंमें उत्पत्तिका निमित्त कारण मिथ्यात्व नहीं माना गया है?

समाधान -- ऐसा नहीं है, क्योंकि, नरकायुकेबन्ध विना मिथ्यादर्शन, अविरति और कषायकी नरकमें उत्पन्न करानेकी सामर्थ्य नहीं है। और पहले बन्धी हुई आयुका पीछेसे उत्पन्न हुए सम्यग्दर्शनसे निरन्वय नाश भी नहीं होता है, क्योंकि, ऐसा मान लेने पर आर्षसे विरोध आता है। जिन्होंने नरकायुका बन्ध कर लिया है ऐसे जीव प्रकार संयमको प्राप्त नहीं हो सकते हैं उसी प्रकार सम्यक्त्वको प्राप्त नहीं होते हैं, यह बात भी नहीं है, क्योंकि, ऐसा मान लेने पर भी सूत्रसे विरोध होता है।

शंका -- जिन जीवोंने पहले नरकायुका बन्ध किया और जिन्हें पीछेसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ ऐसे बध्दायुष्क सम्यग्दृष्टियोंकी नरकमें उत्पत्ति होती है, इसलिये नरकमें असंयतसम्यग्दृष्टि भले ही पाये जावें, परंतु सासादन गुणस्थानवालोंकी (मरकर) नरकमें उत्पत्ति नहीं होती है, क्योंकि, सासादन गुणस्थानका नरकमें उत्पत्तिके साथ विरोध है। इसलिये सासादन गुणस्थानवालोंका नरकमें सद्भाव कैसे पाया जा सकता है?

-----  
पर्याप्तनरकगत्या सह सापर्याप्तया१ (१ मु. सहापर्याप्तया।) इव तस्य विरोधाभावात्२ ((२ णेरइया) सासणसम्माइड्डिसम्माभिच्छाइड्डिइणाणे णियमा पज्जत्ता। जी. सं. सू. ८०.)। किमित्यपर्याप्तया

विरोधश्चेत्स्वभावोऽयं, न हि स्वभावाः परपर्यनुयोगार्हाः । तर्ह्यन्यास्वपि गतिष्वपर्याप्तकालेऽस्य सत्त्वं मा भूत्तेन तस्य विरोधादिति चेन्न, नारकापर्याप्तकालेनेव शेषापर्याप्तपर्यायैः सह विरोधसिद्धेः३ (३ तिरिक्खा X X मणुस्सा X X देवा मिच्छाङ्घ्रि-सासणसम्माङ्घ्रि-असंजदसम्माङ्घ्रिद्विणो सिया पज्जता सिया अपज्जता । जी. सं. सु. ८४. ८९. ९४.) । सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्य पुनः सर्वदा सर्वत्रापर्याप्ताध्दाभिर्विरोधस्तत्र४ (४ मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि । गो. जी. २४.) तस्य सत्त्वप्रतिपादकार्षाभावात् । किमित्यागमे तत्र तस्य सत्त्वं नोक्तमिति चेन्न, आगमस्यातर्कगोचरत्वात् । कथं पुनस्तयोस्तत्र सत्त्वमिति चेन्न, परिणामप्रत्ययेन तदुत्पत्तिसिद्धेः । तर्हि सम्यग्दृष्टयोऽपि तथैव सन्तीति चेन्न,

-----

समाधान --- नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार नरकगतिमें अपर्याप्त अवस्थाके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध है, उस प्रकार पर्याप्त-अवस्था सहित नरकगतिके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध नहीं है । अर्थात् नारकियोंके पर्याप्त अवस्थामें दूसरा गुणस्थान उत्पन्न हो सकता है । यदि कहो कि नारकगतिमें अपर्याप्त अवस्थाके गति दूसरे गुणस्थानका विरोध क्यों है? तो उसका यह उत्तर है, कि यह नारकियोंका स्वभाव है, और स्वभाव दूसरेके प्रश्नके योग्य नहीं होते हैं ।

शंका -- यदि ऐसा है, तो अन्य गतियोंके अपर्याप्त कालमें भी सासादन गुणस्थानका सद्भाव मत होओ, क्योंकि, अपर्याप्त कालके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध है?

समाधान -- यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि, जिसतरह नारकियोंके अपर्याप्त कालके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध है, उस तरह शेष गतियोंके अपर्याप्त कालके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध नहीं है । केवल सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका तो सदा ही सभी गतियोंके अपर्याप्त कालके साथ विरोध है, क्योंकि, अपर्याप्त कालमें सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका अस्तित्व बतानेवाले आगमका अभाव है ।

शंका -- आगममें अपर्याप्त कालमें मिश्र गुणस्थानका सत्त्व क्यों नहीं बताया?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, आगम तर्कका विषय नहीं है ।

शंका -- तो फिर सासादन और मिश्र इन दोनों गुणस्थानोंका नरकगतिमें सत्त्व कैसे संभव है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, परिणामोंके निमित्तसे नरकगतिकी पर्याप्त अवस्थामें उनकी उत्पत्ति बन जाती है ।

शंका -- तो फिर सम्यग्दृष्टि भी उसी प्रकार होते हैं, ऐसा मानना चाहिये? अर्थात्

इष्टत्वात् । सासादनस्येव सम्यग्दृष्टेरपि तत्रोत्पत्तिर्मा भदिति चेन्न, प्रथमपृथिव्युत्पत्तिं प्रति निषेधाभावात् । प्रथमपृथिव्यामिव द्वितीयादिषु पृथिवीषु सम्यग्दृष्टयः किन्नोत्पद्यन्त इति चेन्न, सम्यक्त्वस्य तत्रतन्यापर्याप्ताध्या सह विरोधात्१ (१ हेड्डिमछप्पुढवीणं जोइसिवणभवणसव्वइत्थीणं । पुण्णिदरे ण हि सम्मो ॥ गो. जी. १२८.) । नोपरिमगुणानां तत्र सम्भवः, तेषां संयमासंयमसंयमपर्यायेण सहात्र विरोधात् ।

तिर्यग्गतौ गुणस्थानान्वेषणार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

तिरिक्खा पंचसु ट्ठाणेषु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा त्ति<sup>२</sup> (२ तिर्यग्गतौ तान्येव संयतासंयतस्थानाधिकानि सन्ति । स. सि. १८.) ॥२६॥

तिर्यग्ग्रहणं शेषगतिनिराकरणार्थम् । पञ्चसु स्थानेषु३ (३ मु. पञ्चसु गुणस्थानेषु) सन्तीति वचनं षडादिसंख्याप्रतिषेधफलम् । मिथ्यादृष्ट्यादिगुणानां नामनिर्देशः सामान्यवचनतः

नरकगतिमें पर्याप्त अवस्थामें सम्यग्दर्शनकी भी उत्पत्ति मानना चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, यह बात तो हमें इष्ट ही है, अर्थात् सातों पृथिवियोंकी पर्याप्त अवस्थामें सम्यग्दृष्टियोंका सद्भाव माना गया है ।

शंका -- जिस प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि मरकर नरकमें उत्पन्न नहीं होते हैं, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टियोंको मरकर नरकमें उत्पत्ति नहीं होनी चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, सम्यग्दृष्टि मरकर प्रथम पृथिवीमें उत्पन्न होते हैं, इसका आगममें निषेध नहीं है ।

शंका -- जिस प्रकार, प्रथम पृथिवीमें सम्यग्दृष्टि मरकर उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार द्वितीयादि पृथिवियोंमें सम्यग्दृष्टि जीव मरकर क्यों उत्पन्न नहीं होते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, द्वितीयादि पृथिवियोंके अपर्याप्त कालके साथ सम्यग्दर्शनका विरोध है, इसलिये सम्यग्दृष्टि मरकर द्वितीयादि पृथिवियोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं ।

इन चार गुणस्थानोंके अतिरिक्त ऊपरके गुणस्थानोंका नरकमें सद्भाव नहीं है, क्योंकि, संयमासंयम और संयम-पर्यायके साथ नरकगतिमें रहनेका विरोध है ।

अब तिर्यच गतिमें गुणस्थानोंके अन्वेषण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत इन पांच गुणस्थानोंमें तिर्यच होते हैं ।।२६।।

शेष गतियोंके निराकरण करनेके लिये 'तिर्यग्' पदका ग्रहण किया है। छह संख्या आदिके निवारण करनेके लिये 'पांच गुणस्थानोंमें होते हैं' यह पद दिया है। 'तिर्यच

-----  
समृत्पद्यमानसंशयनिरोधार्थः । बध्दायुरसंयतसम्यग्दृष्टिसासादनानामिव न सम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयतासंयतानां च तत्रापार्याप्तकाले सम्भवः समस्ति, तत्र तेन तयोर्विरोधात् । अथ स्यात्तिर्यञ्चः पञ्चविधाः -- तिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिरश्च्यः पञ्चेन्द्रियापर्याप्ततिर्यञ्चः इति । तत्र न ज्ञायते क्वेमानि पञ्च गुणस्थानानि सन्तीति? उच्यते, न तावदपर्याप्तपञ्चेन्द्रियातिर्यक्षु पञ्च गुणाः सन्ति, लब्ध्यपर्याप्तेषु मिथ्यादृष्टिव्यतिरिक्तशेषगुणासम्भवात् । तत्कुतोऽवगम्यत इति चेत्? 'पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत-मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केव्वडिया, असंखेज्जा१ (१ जी. द. सू. २१.) इदि, तत्रैकस्यैव मिथ्यादृष्टिगुणस्य संख्यायाः प्रति -

-----  
पांच गुणस्थानोंमें होते हैं' इस सामान्य वचनसे संशय उत्पन्न हो सकता है कि वे पांच गुणस्थान कौन कौन हैं, इसलिये इस संशयको दूर करनेके लिये मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंका नामनिर्देश किया है।

जिस प्रकार बध्दायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि और सासादन गुणस्थानवालोंका तिर्यचगतिके अपर्याप्तकालमें सद्भाव संभव है, उस प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयतोंका तिर्यचगतिके अपर्याप्तकालमें सद्भाव संभव नहीं है, क्योंकि, तिर्यचगतिके अपर्याप्त कालके साथ सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयतका विरोध है।

शंका -- तिर्यच पांच प्रकारके होते हैं, सामान्य-तिर्यच, पंचेन्द्रिय-तिर्यच, पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यच, पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यचिनी और पंचेन्द्रिय-अपर्याप्त-तिर्यच। परंतु यह जाननेमें नहीं आया कि इन पांच भेदोंमेंसे किस भेदमें पूर्वोक्त पांच गुणस्थान होते हैं?

समाधान -- उक्त शंका पर उत्तर देते हैं कि अपर्याप्त-पंचेन्द्रिय-तिर्यचोंमें तो पांच गुणस्थान होते नहीं हैं, लब्ध्यपर्याप्तकोंमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको छोडकर शेष गुणस्थान ही असंभव हैं।

शंका -- यह कैसे जाना कि लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें पहला ही गुणस्थान होता है?

समाधान --- ‘पंचेन्द्रिय-तिर्यच-अपर्याप्त-मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं’ इस प्रकारकी शंका होने पर द्रव्यप्रमाणानुगममें उत्तर दिया कि ‘असंख्यात’ हैं। इस तरह द्रव्यप्रमाणानुगममें लब्ध्यपर्याप्तक-पंचेन्द्रिय-तिर्यचोंके एक ही मिथ्यादृष्टि-गुणस्थानकी संख्याका प्रतिपादन करनेवाला आर्षवचन मिलता है। इससे पता चलता है कि लब्ध्यपर्याप्तकोंके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है। शेष चार प्रकारके तिर्यचोंमें पांचों ही गुणस्थान होते हैं। यदि शेषके चार भेदोंमें पांच गुणस्थान न माने जाय, तो उन चार प्रकारके तिर्यचोंमें पांच गुणस्थानोंकी संख्या आदिके प्रतिपादन करनेवाले द्रव्यानुयोग आदि आगममें

पादकार्षात्। शेषेषु पञ्चापि गुणस्थानानि सन्ति, अन्यथा तत्र पञ्चानां गुणस्थानानां संख्यादिप्रतिपादकद्रव्याद्यार्षस्याप्रामाण्यप्रसङ्गात्। अत्र पञ्चविधास्तिर्यञ्चः किन्न निरुपिता इति चेन्न, ‘आकृष्टाशेषविशेषविषयं सामान्यम्’ इति द्रव्यार्थिकनयावलम्बनात्। तिरश्चीष्वपर्याप्ताध्यायां मिथ्यादृष्टिसासादना एव सन्ति१ (१ पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाइटिसासणसम्माइटिट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ जी. सं. सू. ८७.), न शेषास्तत्र तन्निरुपकार्षाभावात्२ (२ सम्मामिच्छाइटिसंजदसम्माइटिसंजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ। जी. सं. सू. ८८.)। भवतु नाम सम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयतासंयतानां तत्रासत्त्वं पर्याप्ताध्यायामेवेति नियमोपलम्भात्। कथं पुनरसंयतसम्यग्दृष्टिनामसत्त्वमिति? न, तत्रासंयतसम्यग्दृष्टीनामुत्पत्तरेभावात्। तत्कुतोऽवगम्यत इति चेत् --

छसु हेटिमासु पुढवीसु जोइस-वण-भवण-सव्व-इत्थीसु।

णेदेसु समुप्पज्जइ समाइट्ठी दु जो जीवो३ (३ प्रा. पं. १, १९३.) ॥१३३॥

इत्यार्षात्।

अप्रमाणताका प्रसंग आ जायगा।

शंका -- सूत्रमें तिर्यचसामान्यके स्थानपर पांच प्रकारके तिर्यचोंका निरूपण क्यों नहीं किया?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, 'अपनेमें संभव संपूर्ण विशेषोंको विषय करनेवाला सामान्य होता है' इस न्यायके अनुसार द्रव्यार्थिक अर्थात् सामान्य नयके अवलम्बनसे संपूर्ण भेदोंका तिर्यच-सामान्यमें अन्तर्भाव कर लिया है, अतएव पांचों भेदोंका अलग अलग निरूपण नहीं किया, किंतु तिर्यच इतना सामान्य पद दिया है।

तिर्यचनियोंके अपर्याप्तकालमें मिथ्यादृष्टि और सासादन ये दो गुणस्थानवाले ही होते हैं, शेष तीन गुणस्थानवाले नहीं होते हैं, क्योंकि, तिर्यचनियोंके अपर्याप्त-कालमें शेष तीन गुणस्थानोंका निरूपण करनेवाले आगमका अभाव है।

शंका -- तिर्यचनियोंके अपर्याप्तकालमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयत इन दो गुणस्थानवालोंका अभाव रहा आवे, क्योंकि, ये दो गुणस्थान पर्याप्त-कालमें ही पाये जाते हैं, ऐसा नियम मिलता है। परंतु उनके अपर्याप्त-कालमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अभाव कैसे माना जा सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, तिर्यचनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, इसलिये उनके अपर्याप्त-कालमें चौथा गुणस्थान नहीं पाया जाता है।

शंका -- यह कैसे जाना जाता है?

समाधान -- सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम पृथिवीके विना नीचेकी छह पृथिवियोंमें, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवोंमें, और सर्व प्रकारकी स्त्रियास्सेंमें मरकर उत्पन्न नहीं होता है ॥१३३॥